खंड VII

औपनिवेशिक भारत में इतिहास लेखन

समय रेखा

औपनिवेशिक इतिहास लेखन

जेम्स मिल

माउंटस्टुअर्ट एलफिंस्टन

इलियट एवं डाउसन

विंसेंट स्मिथ

राष्ट्रवादी लेखन

रामकृष्ण गोपाल भंडारकर

काशी प्रसाद जायसवाल

राधा कुमुद मुखर्जी

रमेश चन्द्र मजूमदार

THE PEOPLE'S UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

1886 में ब्रिटिश साम्राज्य

लेखक: वाल्टर क्रेन (1845-1915)

स्रोत: http://maps.bpl.org/id/M8682/

स्रोत: https://en.wikipedia.org/wiki/Historiography_of_the_British_Empire#/media/File:Imperial_Federation,_Map_of_the_World_Showing_the_Extent_of_the_British_Empire_in_1886_(levelled).jpg

इकाई 17 औपनिवेशिक इतिहास लेखन*

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 औपनिवेशिक इतिहास लेखन की प्रमुख अवधारणाएँ

17.3 कुछ महत्वपूर्ण औपनिवेशिक इतिहासकार

17.3.1 जेम्स मिल

17.3.2 माउंटस्टुअर्ट एल्फ़िन्स्टन

17.3.3 इलियट और डाउसन

17.3.4 विंसेंट स्मिथ

17.4 सारांश

17.5 बोध प्रश्नों के उत्तर

17.6 संदर्भ ग्रंथ

17.7 शैक्षणिक वीडियो

17.0 उद्देश्य

इस इकाई का सरोकार औपनिवेशिक काल में औपनिवेशिक प्रशासकों तथा विद्वानों द्वारा लिखे गए इतिहास से है। यह आपको इतिहास के संबंध में उनके विचारों में समानताओं तथा भिन्नताओं से परिचित कराएगी। इस इकाई के अध्ययन के बाद आपः

- औपनिवेशिक इतिहास लेखन के इतिहास तथा आधारभूत विचारों के विषय में सीख पाएँगे,
- विभिन्न औपनिवेशिक इतिहासकारों के बीच तुलना करने में सक्षम होंगे, और
- इन इतिहासकारों के विचारों को पहचान पाएँगे कि भारत में ब्रिटिश शासन की प्रगति के साथ वे किस तरह विकसित हुए।

17.1 प्रस्तावना

औपनिवेशिक इतिहास का लेखन इतिहासलेखन की ऐसी धारा थी जो मुख्यतः उन प्रशासक-विद्वानों द्वारा विकासित हुई थी जो ब्रिटिश औपनिवेशिक हुकूमत की भारत में निरंतरता पर विचार करते हुए भारत को ऐतिहासिक रूप से समझना तथा वर्णित करना चाहते थे। इस प्रकार, भारत के विषय में ज्ञान प्राप्त करना, इस ज्ञान को इतिहास के स्वरूपों में ढालना और उपनिवेश (colony) के साथ विषमता भरे ब्रिटिश संबंधों को जारी रखने की आकांक्षा ही औपनिवेशिक इतिहासकारों के प्रयासों में निहित थी। इस इकाई में हम औपनिवेशिक इतिहासलेखन के महत्वपूर्ण सूत्रीकरणों तथा जिन तरीकों से ये विचार औपनिवेशिक इतिहासकारों के लेखन में प्रतिबिंबित हुए उनको समझने का प्रयास करेंगे।

17.2 औपनिवेशिक इतिहास लेखन की प्रमुख अवधारणाएँ

औपनिवेशिक इतिहासलेखन समरूप या एकरूप नहीं था क्योंकि यह 18वीं शताब्दी के मध्य से 200

* प्रो. शशि भूषण उपाध्याय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

सालों तक के काल में विकसित होता रहा था। औपनिवेशिक इतिहासलेखन स्वयं में विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियों को समाहित किए हुए है जो कभी-कभी एक दूसरे का विरोध भी करती हैं। औपनिवेशिक इतिहासलेखन के अंतर्गत मूलभूत रूप से तीन प्रकार की प्रवृत्तियाँ थीं: प्राच्यवादी, इंजीलवादी (Evangelicalist) और आंग्लवादी (Anglicist)। कभी-कभी कुछ इतिहासकारों में ये तीनों प्रवृत्तियाँ आपस में घुल-मिल गई हैं।

अठारहवीं शताब्दी से ही यूरोप के प्रतिमानों पर भारत के इतिहास को लिखने के प्रयास हुए हैं। इस काल में विभिन्न यूरोपीय देशों में प्रबोधन (Enlightenment) अपनी संपूर्ण शक्ति के साथ प्रभाव में था। प्रबोधन के विचारक, विशेष रूप से वोल्टेयर/वाल्तेयर (Voltaire) और डिडरोट/दिदरों (Diderot), विभिन्न देशों में यूरोपीय उपनिवेशीकरण में निहित दुर्व्यवहारों के प्रति आलोचक रुख रखते थे और वे एशियाई सभ्यता के कई पहलुओं की प्रशंसा भी करते थे। भारत के संदर्भ में प्रबोधन का परिणाम उस विचारधारा में निकला जिसे 'प्राच्यवाद' (Orientalism) कहते हैं। इसमें भारतीय सभ्यता की प्रशंसा और भारतीय दृष्टिकोणें तथा ज्ञान-तंत्रों को समझने का प्रयास भी शामिल था। विलियम जोंस, हेनरी कोलब्रुक, चार्ल्स विल्किंस, एच. एच. विल्सन और जेम्स प्रिंसेप प्रमुख प्राच्यवादियों में शामिल थे जिन्होंने औपनिवेशिक काल में भारतीय इतिहास की आधारशिला रखी थी। उनके लेख मुख्यतः प्राचीन भारत के इतिहास और संस्कृति पर केंद्रित हैं और अक्सर उन्होंने भारतीय इतिहास के मध्यकाल को यूरोपीय मध्यकाल की तरह अंधकार के युग के रूप में चित्रित किया।

इंजीलवादी प्रवृत्ति व झुकाव तीक्षणता के साथ संपूर्ण भारतीय परम्परा के प्रति गंभीर रूप से आलोचक रवैया रखते थे जिसे यह ईसाई धर्म के धार्मिक दृष्टिकोण से देखती थी। इसके प्रतिपादकों का लक्ष्य ब्रिटिश काल से पूर्व की सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति और सभ्यता को नीचा दिखाना था ताकि धर्मांतरण को सुगम बनाया जा सके। चार्ल्स ग्रांट और विलियम वार्ड इंजीलवादी इतिहासकारों में सबसे महत्वपूर्ण थे।

आंग्लवादी प्रवृत्ति का जन्म भी प्रबोधन से हुआ था और यह धर्मनिरपेक्ष स्वरूप की थी किंतु इसने भारत को सभ्यता के पैमाने पर बहुत निचला स्थान दिया था और औपनिवेशिक सरकार के माध्यम से यह प्रशासनिक, शैक्षिक और आर्थिक सुधारों को शुरू करना चाहती थी। यह आधुनिक पश्चिमी सभ्यता को प्रत्येक आयाम में असीमित रूप से सर्वश्रेष्ठ मानती थी। जेम्स मिल इस प्रवृत्ति के सबसे प्रमुख प्रतिनिधि थे।

कुछ ऐसे इतिहासकार भी थे जिनमें विभिन्न प्रकार की विचारधाराओं के प्रवाह से जन्मी प्रवृत्तियों का मिश्रण था। वे भारतीय सभ्यता के प्रशंसक और आलोचक, दोनों, थे। उनका झुकाव बिना पक्ष लिए ऐतिहासिक आख्यान पर ध्यान केंद्रित करने की ओर था। माउंटस्टुअर्ट एल्फ़िन्स्टन और विंसेंट स्मिथ जैसे इतिहासकार इनमें शामिल थे।

यद्यपि ये प्रवृत्तियाँ एक दूसरे से भिन्न हैं, ये आपस में कुछ समान विशेषताओं को साझा करती हैं जो मिलकर औपनिवेशिक इतिहास लेखन का निर्माण करती हैं। इनको निम्नलिखित प्रकार से सारबद्ध किया जा सकता है:

1) औपनिवेशिक इतिहास लेखन ने भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के औचित्य को बढ़ावा दिया, यद्यपि कुछ इतिहासकार कभी-कभी इसकी ज़्यादतियों के आलोचक थे। उन्होंने भारत में इसके लाभदायक प्रभाव के पक्ष में तर्क रखा और अंततः भारत में इसकी निरंतरता का समर्थन किया।

2) उनका विश्वास था कि समकालीन भारत सभ्यता के निचले पायदान पर था जिसे सुधारों की ज़रूरत थी और यह केवल प्रबोधन के विचार से अनुप्रेरित ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार द्वारा ही संभव था। उनका विचार था कि पश्चिमी विज्ञान और प्रौद्योगिकी भारतीयों को आधुनिक युग की ओर प्रेरित व उन्मुख करने में काम आएगी। इस प्रकार केवल ब्रिटिश विचारों और प्रशासन के हस्तक्षेप के माध्यम से भारत के पिछड़ेपन को सुधारा जा सकता था।

3) समकालीन पश्चिमी सभ्यता संपूर्ण रूप में अपने सभी पहलुओं में सर्वश्रेष्ठ थी और भारतीयों को अपनी स्थिति को बेहतर बनाने के लिए उनका अनुकरण करना चाहिए। आदिम स्वरूप से

वैज्ञानिक स्वरूप की ओर सभ्यता की इस रेखीय गति का यह विश्वास सामान्य था और आमतौर पर यह माना जाता था कि भारत जहाँ इस पैमाने पर निचले बिंदु पर मौजूद था वहीं आधुनिक पश्चिमी सभ्यता प्रगति के सर्वोच्च बिंदु पर स्थित थी।

4) सामान्यतः यह माना जाता था कि भारत का कोई इतिहास नहीं है। जो भी यहाँ इतिहास के रूप में नज़र आता था वह वास्तव में कथाओं, किस्सों और मिथकों का एक संग्रह मात्र था। इस प्रकार यह औपनिवेशिक इतिहास लेखन की परियोजना थी कि भारत को एक इतिहास उपलब्ध कराया जाए।

5) औपनिवेशिक इतिहास लेखन के अनुसार भारत एक गतिहीन ग्राम-समाजों का ठहराव भरा देश था जिसकी जनसंख्या गतिहीन थी और इसे प्रगति के पथ पर केवल औपनिवेशिक सत्ता के प्रयासों से ही आगे ले जाया जा सकता था।

6) औपनिवेशिक इतिहासकारों का यह विश्वास था कि भारतीय समाज हमेशा से जातियों, समुदायों और पंथों में विभाजित रहा है। इसके अतिरिक्त कुछ बड़े साम्राज्यों के काल को छोड़कर भारत में कभी भी राजनीतिक एकता नहीं रही है। यह केवल ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन था जिसने इसे एकता का आभास करवाया था। यद्यपि इसे केवल ऊपर से ही आरोपित किया जा सका था और जैसे ही औपनिवेशिक शासन यहाँ से हटेगा भारतीय समाज अराजकता और परस्पर युद्ध में डूब जाएगा।

7) औपनिवेशिक इतिहास लेखन में प्राच्यवादी निरंकुशता का विचार आगे बढ़ाया गया जिसका तात्पर्य यह था कि सभी भारतीय राजा और शासक सर्वाधिकारवादी निरंकुश शासक थे। केवल औपनिवेशिक सरकार ही भारत को थोड़ी-थोड़ी मात्रा में लोकतांत्रिक संस्थाओं से परिचित कराते हुए लोकतंत्र के रास्ते पर ले जा सकती थी।

8) बहुत से औपनिवेशिक इतिहासकारों ने बढ़ते हुए राष्ट्रवादी आंदोलन के प्रति कड़ा आलोचनात्मक रुख दिखाया था जिसे वे कुछ अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों के स्वार्थपूर्ण कारनामों से अधिक कुछ नहीं मानते थे। उनका विश्वास था कि राष्ट्रवादी आंदोलन किसी भी तरह भारत की भलाई में परिणत नहीं होगा बल्कि भारत को राजनीतिक अराजकता और संकट की ओर ले जाएगा। उनका यह भी मानना था कि भारतीय अंग्रेजों के उदारतापूर्ण शासन के प्रति विरोध करते हुए कृतघ्नता प्रकट कर रहे थे। यद्यपि कुछ औपनिवेशिक इतिहासकार ऐसे थे जो बढ़ते हुए राष्ट्रवाद के प्रति सहानुभूति रखते थे वहीं कुछ अन्य मात्र शत्रुतापूर्ण रुख रखते थे।

17.3 कुछ महत्वपूर्ण औपनिवेशिक इतिहासकार

यद्यपि औपनिवेशिक इतिहासकारों की संख्या बहुत है, हम यहाँ केवल चार महत्वपूर्ण औपनिवेशिक इतिहासकारों को इस इकाई में चर्चा हेतु चुनेंगे। इन्हें औपनिवेशिक इतिहासलेखन के विशेष रूप से और भारतीय इतिहासलेखन के सामान्य रूप से विकास में इनके सापेक्षिक महत्व के कारण चुना गया है। इनमें से दो इतिहासकारों का भारतीय सभ्यता के प्रति नकारात्मक रवैया था। यह हैं जेम्स मिल और हेनरी इलियट (जॉन डाउसन वस्तुतः इलियट की उन रचनाओं के संपादक थे जो उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित हुई थीं)। दूसरी ओर, दो अन्य इतिहासकार माउंटस्टुअर्ट एल्फ़िन्स्टन और विंसेंट स्मिथ सामान्यतः भारतीय सभ्यता के प्रति कम आलोचक या प्रशंसात्मक रवैया रखते थे।

17.3.1 जेम्स मिल

यद्यपि रॉबर्ट ओर्मे (Orme) भारत के पहले आधिकारिक औपनिवेशिक इतिहासकार थे, जेम्स मिल (1773-1836) को औपनिवेशिक इतिहास लेखन के संस्थापकों में सबसे अग्रणी माना जाता है। उनकी *हिस्ट्री ऑफ़ ब्रिटिश इंडिया* (जिसे 1806 से 1818 के बीच लिखा गया था और जो छः भागों में प्रकाशित हुई थी) 19वीं शताब्दी के दौरान भारतीय इतिहास की सबसे प्रभावपूर्ण किताब थी। यद्यपि इसको 'ब्रिटिश भारत के इतिहास' का शीर्षक दिया गया था इसके पहले तीन भागों में प्राचीन और मध्यकालीन भारत पर विचार किया गया था और केवल अगले तीन भागों का संबंध भारत में ब्रिटिश शासन से है। भारत में प्राच्यवादी लेखन और विशेषकर विलियम जोंस के लेखन के विरोध में लिखी

गई यह किताब 'भारतीय सभ्यता के प्रति दीर्घकालिक और सबसे गहरे पूर्वाग्रहों का स्रोत' थी (उपाध्याय 2016: 436)। मिल कभी भारत नहीं आए थे, किसी भी भारतीय भाषा से परिचित नहीं थे, उनकी कृति पूर्णतः कई वर्षों से भारत के संबंध में लिखी और संकलित की गई सामग्रियों के आंशिक अध्ययन पर आधारित थी। उन्होंने भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा संग्रहित विशाल सामग्री का अधिक इस्तेमाल नहीं किया और मुख्यतः एक पक्षपात भरे इतिहास का लेखन किया। इस प्रकार के इतिहास में अगर किसी विशेष तर्क के पक्ष में किसी देश के संबंध में कोई तथ्य नहीं मिलते हैं तो दूसरे देशों के संबंध में मौजूद तथ्यों को इन अंतरालों/रिक्तियों को भरने के उपयोग में लाया जाता है। उन्होंने भारतीय सभ्यता, विशेषकर हिंदू सभ्यता, को नीचा दिखाने के लिए इसी तरह काम किया था। फिर भी उनकी पुस्तक को भारत आने वाले युवा सिविल सेवकों/अधिकारियों के लिए पाठ्यपुस्तक के रूप में स्वीकार किया गया था। मिल 19वीं शताब्दी के शुरुआती दशकों में ब्रिटेन में उदित हो रहे साम्राज्यवादी मध्यवर्ग की मानसिकता का प्रतिनिधित्व करते थे और उनकी पुस्तक की सफलता के कारणों की इस रूप में व्याख्या की जा सकती है।

मिल ने इतिहास की परिकल्पना 'सभ्यता की एक प्रक्रिया' के रूप में की थी। इसके अतिरिक्त जहाँ विलियम जोंस ने ब्रिटिश और भारतीय सभ्यताओं और संस्कृतियों के बीच घनिष्ठता को खोजने का प्रयास किया, मिल ने 'समकालीन भारतीय समाज और प्रगतिवादी पश्चिम के बीच क्रमिक रूप से विकसित हुए अंतराल पर विशेष रूप से बल दिया है' (गॉटलोब 2003: 97)। मिल ने भारतीय इतिहास को तीन विभागों में बाँटा था: हिंदू, मुस्लिम और ब्रिटिश। उसका विश्वास था कि ब्रिटिशों के भारत में आगमन से पूर्व के सभी भारतीय शासक निरंकुश और सर्वसत्तावादी थे। सभ्यता की उपलब्धियों के सभी पैमानों पर मिल ने भारत को विभिन्न देशों के बीच निचले स्थान पर रखा था जिनमें यूरोपीय देशों का स्थान सर्वोच्च था। मिल ने प्राच्यवादियों के इस विचार को पूर्ण तरह नकार दिया कि प्राचीन भारतीय सभ्यता अपने समय की सबसे सर्वश्रेष्ठ सभ्यताओं में से थी। इसके बजाय मिल ने दृढ़तापूर्वक कहा कि अपनी अपमानजनक और विभेदकारी जातीय प्रणाली भारतीय समाज की एक 'घृणित अवस्था' थी। उसके अनुसार निरंकुश राजाओं और अंधविश्वासी पुरोहितों ने हिंदुओं को 'मानव जाति का सर्वाधिक दासता-पूर्ण भाग' बना दिया था।

जेम्स मिल हिंदू धर्म को आस्था की एक ऐसी असंगत और अतार्किक व्यवस्था मानते थे जिसमें संपूर्ण रूप से ब्राह्मणों का प्रभुत्व था और जिसे 'बेमिसाल अस्पष्टता' की भाषा में लिखा गया था। उसके अनुसार प्राचीन हिंदू धार्मिक ग्रंथ – *वेद* – 'पूर्ण रूप से अस्पष्ट और अज्ञानता-भरे, असंगत, अनिश्चित क्रम लिए और भ्रम से भरे हुए थे'। वे 'विचारों से हीन विमर्शों के उदाहरणों में सबसे अधिक शब्दाडंबर. युक्त स्वरूप का निर्माण करते हैं। जिस संबंध में ज्ञान न हो उसके प्रति अनुमान लगाने की एक असभ्य दिमाग की ऐसी भयहीन प्रवृत्ति ने कभी स्वयं को इससे अधिक ऊटपटांग और अर्थहीन स्वरूप में अभिव्यक्त नहीं किया है'। हिंदू धर्म में अभिव्यक्त विचार 'अधिकतम अंश तक अमूर्त, निम्नतर और पतनशील हैं'। वह लिखता है:

> किसी भी जन, चाहे वे कितने ही असभ्य और अनजान रहे हों, जिन्होंने इतनी उन्नति की हो कि वे अपने विचारों के संस्मरण हमारे पास लिखित रूप में छोड़ गए हों, ने कभी भी संसार का इतना घटिया और अशोभनीय चित्र प्रस्तुत नहीं किया है जितना कि हिंदुओं के लेखन में प्रस्तुत हुआ है। इनकी अवधारणा में किसी भी प्रकार की संगति, बुद्धिमत्ता या सुंदरता नज़र नहीं आती है। सभी कुछ अव्यवस्थित, सनक से भरा, वासनामयी, लड़ाई, त्रासद, कौतुक, हिंसा और विकृति ही है।
>
> **जेम्स मिल, *हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया***

साहित्य के क्षेत्र में भी, जिसमें प्राचीन भारतीयों को दक्ष समझा जाता था, मिल उनकी आलोचना करता है। उसके अनुसार *महाभारत* और *रामायण*:

> न केवल शब्द-आडंबर से भरे और अप्राकृतिक हैं ... बल्कि सरलता में कमतर, अधिक असंतुलित और इनमें ऐसा बहुत कम ही है जो किसी प्रकार का लगाव पैदा करे, सहानुभूति जगाए या प्रशासन, प्रतिशोध और आतंक में दक्षता का प्रदर्शन करे ... ये बहुत अधिक विस्तृत और रसहीन हैं। ये अक्सर अपने लंबे उद्धरणों के माध्यम से उस अंश तक तुच्छ और बचकाना प्रतीत होते हैं कि केवल यूरोपीय काव्य से परिचय रखने वाला मुश्किल से ही इनकी उस शैली को ग्रहण कर पाएगा जिनमें इनकी रचना की गई है ... 'ये त्रुटियों, अतिशयोक्ति, रूपकों, दुर्बोधता, पुनरुक्ति, दोहराव भरे शब्दाडंबर, भ्रम, असंगति का प्रदर्शन करते हैं ...
>
> **एस. सी. मित्तल में उद्धृत, 1995, संस्करण 1: 24.25**

इस प्रकार मिल ने भारतीय सभ्यता और संस्कृति को नीचा दिखाने के लिए एक अतिवादी सुर अपनाया था। यद्यपि भारतीय सभ्यता के विषय में उसके विचारों को अन्य औपनिवेशिक इतिहासकारों ने हमेशा ही स्वीकार नहीं किया था किंतु वह सामान्य ब्रिटिश पाठकों के बीच अत्यधिक लोकप्रिय था।

बोध प्रश्न-1

1) औपनिवेशिक इतिहासलेखन के महत्वपूर्ण विचारों की विवेचना कीजिए।

....
....
....

2) किस प्रकार आप समझते हैं कि जेम्स मिल एक औपनिवेशिक इतिहासकार था?

....
....
....

17.3.2 माउंटस्टुअर्ट एल्फ़िन्स्टन

जहाँ जेम्स मिल कभी भारत नहीं आए थे, एल्फ़िन्स्टन (1779-1859) एक प्रशासक और विद्वान के रूप में लंबे समय तक भारत में रहे थे। भारतीय समाज, साहित्य और भाषाओं के साथ उनका परिचय भारत के संबंध में उनकी बेहतर समझ में परिणत हुआ। वह मिल के इतिहास की सनक और भारतीयों और भारतीय सभ्यता के उसके बहुत ही पक्षपातपूर्ण विवरण के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि भी रखते थे। उन्होंने मिल के संकीर्ण उपयोगितावादी ढाँचे को भी स्वीकार नहीं किया। उनका विश्वास था कि यद्यपि मिल का इतिहास ब्रिटेन में लोकप्रिय रहा हो इसे भारत में उसी प्रकार ग्रहण नहीं किया गया है। एल्फ़िन्स्टन मिल के लेखन के बड़े आलोचक थे और इसे भारतीयों के प्रति पूर्वाग्रह से ग्रस्त मानते थे। वह लिखते हैं:

> मुझे लगता है कि मिल अपने इतिहास के अंग्रेजों वाले भाग में अधिक साफ़गोई रखते हैं जितना मैं उनके देशीय इतिहास वाले हिस्से में पाता हूँ। उनकी अपेक्षा उनकी कठोरता तथ्यों को नया रंग देने या उनके प्रति पक्षपातपूर्ण रवैया अपनाने के बजाय उनकी तिरस्कारपूर्ण और उपहासात्मक, व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति में अधिक नज़र आती है। मेरा यह मानना है कि वह अपनी कुछ बातों को लेकर ग़लतफ़हमी में थे और वे किसी परिणाम पर पहुँचने के बजाय विवादों को पैदा करने में अधिक व्यस्त प्रतीत होते हैं। **एस. सी. मित्तल में उद्धृत, 1995, संस्करण 1: 61**

एल्फ़िन्स्टन की *हिस्ट्री ऑफ़ हिंदू एंड मुहम्मडन इंडिया* (1841) और अधूरी रह गई कृति *ब्रिटिश पावर इन द ईस्ट* को भारत के प्रतिस्पर्धी विवरण के तौर पर लिखा गया था जो मिल के इतिहास से कई पहलुओं में भिन्नता रखती थी। वह भारतीय सांस्कृतिक उपलब्धियों के प्रति अधिक प्रशंसात्मक रवैया रखते थे। उनका विचार था कि पूर्वी देश सामान्य रूप से और भारत विशेष रूप से अपने प्राचीन अतीत में कई अन्य देशों की तुलना में, जिनमें यूरोप के देश भी शामिल हैं, उच्च स्तर की सभ्यता को प्राप्त कर चुके थे। उन्होंने साहित्य, दर्शन, गणित, धर्म तथा क़ानून की विभिन्न शाखाओं में प्राचीन भारत की उपलब्धियों की प्रशंसा की। उनका विश्वास था कि 'एक समय हिंदू नैतिक तथा बौद्धिक स्तर पर उच्च स्तर पर थे, अपनी अभी की अवस्था की तुलना में; और अभी अपनी वर्तमान पतन की अवस्था में भी वे यूरोप के कई लोगों के समान स्तर पर खड़े होते थे' (उपाध्याय में उद्धृत, 2016: 440)।

उनके अनुसार प्राचीन हिंदुओं का ज्ञान उच्च अवस्था का था और वे पहले से ही उस प्रकाश को धारण करते थे जो एथेंस के सबसे अच्छे काल में भी सर्वश्रेष्ठ बौद्धिकों के पास था, किंतु मंद स्वरूप में। वह प्राचीन विश्व की प्रतिस्पर्धी सभ्यताओं के बीच कई बौद्धिक उपलब्धियों के कारण हिंदू सभ्यता को उच्चतर मानते थे। उनका मत तथा विश्वास था कि कई क्षेत्रों में 'प्राचीन भारतीय शिष्यों/सीखने वालों के बजाय गुरुओं/सिखाने वालों का दर्जा' रखते थे। वह लिखते हैं:

> अपने प्रतिस्पर्धियों के मुक़ाबले विज्ञान को श्रेष्ठता के स्तर पर पहुँचाने में हिंदुओं की सर्वश्रेष्ठता पर कोई संदेह नहीं है। न केवल आर्यभट्ट डायोफैंटस (Diophantus) के मुक़ाबले श्रेष्ठ था ... बल्कि

> उसके और उसके बाद आने वालों के बीजगणित के सिद्धांतों ने ही हमारे समय में विद्यमान रहे बीजगणितज्ञों की खोजों को प्रभावित किया है।
>
> **एस. सी. मित्तल में उद्धृत, 1995, संस्करण 1: 65**

उनके अनुसार प्राचीन भारतीय इतने उन्नत थे कि वे 'लगभग हमारे समय के ही प्रतीत होते हैं' (एस. सी. मित्तल में उद्धृत, 1995, संस्करण 1: 64)। उनका यह भी नहीं मानना था कि *जाति* व्यवस्था भारत के सांस्कृतिक और बौद्धिक विकास के लिए एक विभाजनकारी और बाधक कारक था। उन्होंने लिखा है कि '*जाति* की संस्था के होने पर भी ऐसा कोई देश नहीं है जहाँ मनुष्य निम्नतम स्तर से इतनी आसानी से उठकर उच्चतर स्तर को पा लेता था। अवध का पहला नवाब (अब राजा) एक तुच्छ व्यापारी था; पहला पेशवा एक ग्रामीण लेखपाल था; होलकरों के पूर्वज बकरियाँ पालते थे और सिंधियाओं के पूर्वज दास थे' (उपाध्याय में उद्धृत, 2016: 440)।

अपनी *हिस्ट्री* के अंतिम भाग में उन्होंने भारत में मुस्लिम राजाओं के शासन पर विचार किया है। वे इस काल का भी एक संतुलित नज़रिया पेश करते हैं। उन्होंने अपने तर्क को अकबर के शासन की तुलना औरंगज़ेब के शासन से करते हुए रखा था और अकबर की सहिष्णु नीतियों, जिनसे उसे अपनी हिंदू प्रजा की निष्ठा प्राप्त हुई तथा जिसका परिणाम देश की एकता में भी देखने को मिला था, की प्रशंसा की। इसके विपरीत उन्होंने औरंगज़ेब जिसने अकबर की सहिष्णु और समावेशी नीतियों को उलट कर रख दिया था, जिसका परिणाम हिंदुओं के अलगाव में निकला था, के शासन की आलोचना की। औरंगज़ेब की धर्मांध नीतियों ने मराठाओं, सिखों, जाटों तथा अन्य के विद्रोहों को जन्म दिया था।

लेकिन, भारतीय शासकों की प्रशंसा के बावजूद एल्फ़िन्स्टन अन्य औपनिवेशिक इतिहासकारों की भाँति यह मानते थे कि उनके समय में पश्चिमी सभ्यता की सर्वश्रेष्ठता निर्विवादित थी। उन्होंने कभी भी औपनिवेशिक शासन की वैधता और भारत के लिए उसके लाभदायक प्रभावों पर कोई संदेह नहीं किया।

17.3.3 इलियट और डाउसन

हेनरी इलियट (1808-1853) और जॉन डाउसन (1820-1881) को ऐसे औपनिवेशिक इतिहासकारों के रूप में जाना जाता है जिन्होंने हिंद-फ़ारसी (Indo-Persian) इतिहासों का व्यापक संकलन तैयार किया। इलियट का भारत के संबंध में प्रारंभिक ऐतिहासिक कार्य *बिब्लियोग्राफ़िकल इंडेक्स टू हिस्टौरियंस ऑफ़ मोहम्मडन इंडिया* (1849) था। इसके बाद सिंध में अरबों पर एक लघु पुस्तक (1853) सामने आई। उनका मुख्य लेखन आठ भागों में *हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया एज़ टोल्ड बाय इट्स ओन हिस्टौरियंस* उनकी मृत्यु के बाद 1866 से 1878 के बीच प्रकाशित हुआ जिसे जॉन डाउसन द्वारा संपादित और अंतिम रूप प्रदान किया गया था। कई दशकों तक भारत के मध्यकालीन इतिहासकारों के लेखों का यह चयनित संकलन मध्यकालीन इतिहासकारों द्वारा महत्वपूर्ण स्रोत-सामग्री के रूप में इस्तेमाल किया जाता रहा। किंतु कुछ इतिहासकारों द्वारा इनकी आलोचना भी की गई क्योंकि इन औपनिवेशिक इतिहासकारों ने मध्यकालीन भारतीय राजव्यवस्था और समाज के वास्तविक चित्र को विकृत बना दिया था।

हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया 'मध्यकालीन भारतीय इतिहासकारों के लेखों की एक सामान्य प्रस्तुति नहीं थी बल्कि व्यापक यूरोपीय अकादमिक परम्परा के भीतर निहित एक पूर्वाग्रहग्रस्त चयन की प्रक्रिया थी' (उपाध्याय, 2016: 443)। इलियट का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य मध्यकालीन भारत के कृषि इतिहास, ग्रामीण सामाजिक वर्गों तथा राजस्व संग्रह की पद्धतियों के संबंध में जानकारी उपलब्ध कराना था क्योंकि उनके विषय में 19वीं शताब्दी के मध्य में बहुत अधिक जानकारी नहीं थी। किंतु उनका उद्देश्य इससे कुछ व्यापक था। उनकी आकांक्षा थी कि उनका संकलन 'ज्ञान के ऐसे उपयोगी भंडारों का सृजन करे जो व्यापक अकादमीय उद्देश्यों की पूर्ति करे, जिससे आने वाले समय के विद्वान अधिक बेहतर और ठोस चित्र का निर्माण करने हेतु अपने परिश्रम और अध्यवसाय से ऐसी सामग्री निकाल सकें'(वाही में उद्धृत, 1990: 71)। भारत के मुस्लिम इतिहास के पुनर्निर्माण में यह दिलचस्पी इलियट द्वारा कंपनी को अवध के नवाब के पुस्तकालय में मौजूद किताबों और पांडुलिपियों को वित्तीय सीमाओं के बावजूद संरक्षित करने के लिए मनाने में प्रकट होती है। उनका संपर्क एच. एच. विल्सन जैसे प्राच्यवादियों के साथ भी था और उनके बीच पत्राचार भी हुआ।

किंतु मुस्लिम शासन के गंभीर नकारात्मक चित्रण में औपनिवेशिक पक्षपात स्पष्ट नज़र आता है। भारतीय-मुस्लिम इतिहासलेखन को भी बख्शा नहीं गया था। इलियट ने यह घोषणा की कि ऐसा चित्रण साधारण इतिवृत्तों से बेहतर नहीं हैः

> उन्हें इतिहास की शैली के रूप में प्रस्तुत करना लगभग उन्हें ग़लत नाम देना होगा। वे मुश्किल से ही साधारण इतिवृत्तों से ऊँची श्रेणी का होने का दावा कर सकते हैं। वे अपने अधिकांश हिस्से में घटनाओं के शुष्क वर्णन से अधिक कुछ भी नहीं है जिन्हें कालक्रम के संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है। कभी भी उन्हें उनके संबंधों के अनुरूप दार्शनिक रूप से श्रेणीबद्ध नहीं किया गया है। बिना कारणों या परिणामों पर चिंतन किए इनमें ऐसा कोई संकेत या चिंतन नहीं है जो बचकाना या निम्न कोटि का न हो; और न ही कोई दृष्टि है जो उत्तरोत्तर षड्यंत्रो, विद्रोहों, चालबाज़ियों, हत्याओं, भातृहत्याओं के नीरस सिलसिले को तोड़े ... जहाँ परी-कथाओं तथा क़िस्सों को इतिहास के सामान्य नाम से प्रस्तुत किया गया हो हम ऐसे इतिहासकारों के चरित्र, उद्यमों, मंतव्यों तथा कृत्यों के बारे में जानने के संबंध में बहुत आशा नहीं रख सकते हैं
>
> **उपाध्याय में उद्धृत, 2016ः 414**

भले ही 'हमें ऐसे दृश्यों पर विचार से कुछ राहत मिलती है, जब हम प्रारंभिक मुग़ल बादशाहों के विवरणों तक पहुँचते हैं हमें इन दस्तावेज़ों में राज्य की भव्यता और दरबार के ऐश्वर्यपूर्ण समारोहों, साम्राज्य के प्रतिष्ठित व्यक्तियों को प्रदान की गई उपाधियों, जवाहरातों, तलवारों, नगाड़ों, झंडों, हाथियों और घोड़ों के रूप में कुछ ध्यान खींचने वाली सामग्री ही मिलती है'। इलियट लिखते हैंः

> यदि डायोनिसियस (Dionysius) की कृत्रिम परिभाषा को उचित माना जाए कि 'इतिहास का मतलब उदाहरणों के माध्यम से दर्शन की शिक्षा देना है' तो ऐसा कोई भी देशी-भारतीय इतिहासकार नहीं है ... और जो घटिया क़िस्म के हैं, जिनकी कोई कमी नहीं है, यद्यपि वर्णनकर्ता के आनुवांशिक, कुलीन तथा पंथीय पूर्वाग्रहों के कारण उनमें भी मूलगामी सत्य दुर्बोध ही बना रहता है लेकिन दर्शन, जो अतीत के सबक और अनुभव के माध्यम से हमारे लाभ हेतु निष्कर्षों को प्रतिपादित करता है, राजनीतिक विवादों के परिणामों और प्रभावों की जानकारी देता है और भविष्य के लिए उचित परामर्श प्रदान करता है, का कोई चिह्न या संकेत खोजने का प्रयास करना व्यर्थ ही है। घरेलू/आंतरिक इतिहास का भी हमारे इन भारतीय विवरणकारों में बिल्कुल भी कुछ नहीं है ... उनके द्वारा समाज के संबंध में कभी भी विचार नहीं किया गया, न ही इसकी परंपरागत उपयोगिताओं या नज़र आने वाले विशेषाधिकारों पर; न इसके निर्माणकारी या लोकप्रिय संस्थानों पर; न इसके निजी तौर-तरीक़ों या परस्पर अंतःक्रियाओं की आदतों पर। वाणिज्य, कृषि, आंतरिक शासन और स्थानीय न्याय-विधान का भी समान रूप से अभाव है।

अतएव, इलियट का कथन है कि इन मध्यकालीन ऐतिहासिक कृतियों को 'इतिहास के कुछ सबसे आवश्यक तत्वों से रहित कहा जा सकता है। इन मध्यकालीन भारतीय इतिहासों में ऐसा बहुत कम है जो हमें चमकती हुई सतह के भीतर झाँकने में सक्षम बनाए ... और एक निरंकुश सरकार के व्यवहारिक कार्य-संचालन और इसकी कठोर तथा रक्तपिपासु विधियों का राष्ट्र की महान् संरचना/काया पर इन घातक प्रभावों और कृत्यों के प्रभाव का अवलोकन करने का अवसर दें' (*हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया* में इलियट का आमुख-लेख, 1867, संस्करण 1, xix-xx)।

उनके इतिहास में मुस्लिम शासन का वर्णन बहुत ही नकारात्मक तरीके से किया गया है। उनके अनुसार मुस्लिम शासन सामान्य रूप से भारतीय जनता और विशेष रूप से हिंदुओं के लिए त्रासद था। मुस्लिम शासक सामान्य रूप से तानाशाह और अत्याचारी थे जिन्होंने अपनी हिंदू प्रजा के कल्याण के विषय में कभी भी विचार नहीं किया। दमन, शोषण और धार्मिक स्वतंत्रता को नकारना एक सामान्य व्यवहार था। हिंदुओं पर हमले हुए, उनका नरसंहार हुआ, उन्हें गुलाम बनाया गया और उनका धर्मांतरण हुआ। उनके मंदिर और उपासना-स्थल लूट लिए गए तथा नष्ट कर दिए गए। उनकी महिलाओं का अपहरण हुआ, उन्हें दास बनाया गया और जबरदस्ती विवाह करने के लिए बाध्य किया गया। ऐसे अभिकथन इलियट के आमुख-लेख में प्रस्तुत किए गए हैं जो प्रथमतः 1849 में प्रकाशित हुआ था और बाद में 1867 में प्रकाशित प्रख्यात *हिस्ट्री* में इसे शामिल किया गया। स्पष्ट रूप से इसने द्विराष्ट्र के सिद्धांत का सर्वभाँति अनुसरण किया और ब्रिटिश शासन को मुस्लिमों के आतंक से हिंदुओं का उद्धार करने वाला बताया गया। इलियट और डाउसन ने मध्यकालीन भारत को पूर्णतः मुस्लिमों के साथ जोड़ते हुए स्पष्टता और तीक्षता के साथ हिंदुओं और मुस्लिमों के बीच भारत को विभाजित किया। उनके अनुसार यद्यपि मुस्लिम भारत के लिए विदेशी नहीं रह गए थे उनका शासन और उनकी विधियाँ तथा नीतियाँ अत्यधिक

सीमा तक मुस्लिमों के पक्ष में झुकी हुई थीं। हिंदू हमेशा शासित प्रजा बने रहे। संपूर्ण मध्यकाल में लोगों के लिए कोई स्वतंत्रता नहीं थी तथा कोई आर्थिक प्रगति दृष्टव्य नहीं हुई थी। इस प्रकारः

> ऐसे शासकों के अधीन हमें कोई आश्चर्य नहीं हो सकता कि न्याय का प्रवाह भ्रष्ट होता है; कि राज्य के राजस्वों को कभी भी बिना हिंसा और विद्रोह के बिना संग्रहित नहीं किया जाता है; कि गाँवों को जलाया जाता है और उनके निवासियों को नुक़सान पहुँचाया जाता है या उन्हें ग़ुलामी हेतु विक्रय कर दिया जाता है; कि अधिकारीगण सुरक्षा उपलब्ध कराना तो दूर वे स्वयं ही प्रधान लुटेरे और हड़प लेने वाले हैं; कि लूट लिए गए प्रांतों की संपत्ति पर परजीवी और हिजड़े आनंद का भोग करते हैं; और कि गरीबों को शोषकों के दुष्कर्म के विरुद्ध कोई राहत नहीं मिलती है।

इससे उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि 'आमजन अवश्य ही बदहाली और निराशा के गहनतम बिंदु तक डूब चुके थे। हम कुछ दृश्य देखते हैं ... मोहम्मडनों के साथ विवाद के लिए हिंदुओं को मौत के घाट उतारे जाने के, धार्मिक जुलूसों, उपासना और प्रक्षालनों (ablutions) पर प्रतिबंध के, तथा अन्य और असहिष्णु कदमों के, मूर्तियों को खंडित करने के, मंदिरों को ध्वस्त करने के, बलपूर्वक किए गए धर्मांतरणों और विवाहों के, अपमानों और संपत्ति-हरण कर लिए जाने के, हत्याओं व नरसंहारों के, और उन आततायियों की विषयासक्ति और मदिरा के नशे में चूर रहने के। यह दिर्शाता है कि यह चित्र बहुत अधिक बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत नहीं किया गया है ...' (*हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया* में इलियट का 'आमुख-लेख,' 1867, संस्करण 1, xx-xxv)।

उनका तर्क था कि ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार ने भारत के लोगों, विशेष रूप से हिंदुओं के लिए, अपने 50 वर्षों में इतना अधिक किया है जितना कि मुस्लिम सरकारों ने 500 वर्षों में भी नहीं किया था। औपनिवेशिक सरकार ने सड़कें, नहरें बनवाईं और लोक कल्याण की बहुत सी योजनाओं को शुरू करवाया जो मुस्लिम शासकों में से सबसे श्रेष्ठ शासक के अधीन किए गए प्रशासनिक कार्यों से कहीं अधिक हैं। उनका विचार था कि भारत के लिए ब्रिटिश शासन श्रेष्ठतम है क्योंकि यह उदार है और भारत में भारतीयों की भलाई के लिए शासन करता है। उन्होंने तर्क दियाः

> जब हम एक तानाशाही के अत्याचारों और स्वेच्छाचारिता के ध्वंसकारी प्रभावों को देखते हैं हमें एक संतुलित संविधान के मूल्य का उचित तरीके से आकलन करना सीखना चाहिए। जब हम सिंहासन पर विवादित दावों से वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों के लिए होने वाले कष्टों को देखेंगे हम नियमबद्ध उत्तराधिकार के सिद्धांत को अधिक महत्व दे पाएँगे जो किसी भी चुनौती या विवाद का शिकार नहीं होता है। किसी भी अन्य देश में ये कष्ट भारत जितने गंभीर नहीं रहे हैं, किसी भी अन्य देश में इस तरह की घटनाएँ बारंबार नहीं हुई हैं और राजसिंहासन के इतने अधिक के दावेदार नहीं रहे होंगे ... हम पहले ही अपनी सत्ता के पचास सालों में लोगों के आवश्यक कल्याण के लिए बहुत कुछ कर चुके हैं और पूर्वगामी शासकों की अपेक्षा दस गुना हासिल कर पाने में सक्षम हुए ...
>
> ***हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया* में इलियट का 'आमुख-लेख,' 1867, संस्करण 1, xxv-xxvii**

17.3.4 विंसेंट स्मिथ

विंसेंट स्मिथ (1848-1920) को भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के अंतिम चरण का अत्यंत महत्वपूर्ण औपनिवेशिक इतिहासकार माना जाता है। उन्हें जेम्स मिल के बाद भारत के सर्वाधिक महत्वपूर्ण इतिहासकार के रूप में पहचाना जाता है। उनकी *अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया* (1904) भारतीय इतिहास के संबंध में एक सफल पुस्तक रही है जिसके कई संस्करण प्रकाशित हुए हैं। उनकी और अधिक सारगर्भित ऑक्सफ़ोर्ड *हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया* (1919) को भी उच्च प्रतिष्ठा प्राप्त है। इन दोनों ही कृतियों को भारतीय महाविद्यालयों में मानक पाठ्य-पुस्तकों के रूप में स्वीकार किया गया था। इसके अलावा उन्होंने *हिस्ट्री ऑफ़ फ़ाइन आर्ट्स इन इंडिया एंड सीलोन* (1911) तथा *इंडियन कॉन्स्टिट्यूशनल रिफॉर्म व्यूड इन द लाइट ऑफ़ हिस्ट्री* (1919) को भी प्रकाशित करवाया। उनकी महत्वपूर्ण उपलब्धि भारतीय इतिहास को राजनीतिक घटनाओं, वंशों और महान् शख्सियतों के चारों ओर व्यवस्थित एक ठोस कालानुक्रम में प्रस्तुत करना है। स्मिथ की किताबों ने उनके काल में मौजूद समस्त ज्ञान को आधिकारिक तरह से सारबद्ध रूप में प्रस्तुत किया। अतः उनके ऐतिहासिक ग्रंथ आने वाले कई दशकों तक अधिकांश भारतीय विश्वविद्यालयों में बेमिसाल पाठ्य-पुस्तकों के रूप में बने रहे।

विंसेंट स्मिथ ने इतिहास को सामान्यतः भारत के एक संतुलित और निष्पक्ष दृष्टिकोण के रूप में प्रस्तुत किया किया था। अपनी *ऑक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री* में स्मिथ भारत में इतिहास लेखन के संबंध में स्वयं का विचार प्रस्तुत करते हैं जिसमें उन्होंने कई अन्य लोगों के मतों के विपरीत इस बात पर बल दिया है कि भारतीय इतिहास की शुरुआत भारत में ब्रिटिश शासन के आरम्भ के साथ नहीं हुई थी। वह लिखते हैं:

> इतिहास का मूल्य और उसके प्रति रुचि मुख्यतः इस पर निर्भर करते हैं कि किस अंश तक वर्तमान अतीत को स्पष्ट करता है। भारतीय इतिहास पर एक नई किताब को एक नवीन भावना के साथ लिखा जाना चाहिए क्योंकि इसे एक नए तरह के पाठक वर्ग को संबोधित करके लिखा जा रहा है। इतना तो निश्चित है कि भारत का इतिहास प्लासी के युद्ध के साथ आरम्भ नहीं होता है, जैसा कि कुछ लोगों का मानना है कि इसका आरंभ वहाँ से होना चाहिए, और यह कि भारत के प्राचीन इतिहास का परिपक्व ज्ञान हमेशा आधुनिक भारत की कई समस्याओं को सुलझाने के प्रयासों में एक मूल्यवान सहायक तत्व होगा।
> **सी. एच. फ़िलिप्स (संपा.) में उद्धृत ए. एल. बाशम, 1961ः 267**

अपने पेशेवर दृष्टिकोण के कारण स्मिथ के इतिहास ने कई औपनिवेशिक इतिहासकारों के लेखों में पाए जाने वाले सही और ग़लत के निर्धारण से स्वयं को दूर रखा। इसके अतिरिक्त उन्होंने मुस्लिम आक्रमण से पूर्व भारत के राजनीतिक इतिहास का एक सुसंगत वृत्तांत प्रस्तुत किया। उन्होंने 'प्राचीन भारत की कथा को एक सुव्यवस्थित आख्यान के रूप में और ''बिना पक्षपात के'' प्रस्तुत करने का दावा किया' (उपाध्याय में उद्धृत, 2016ः 444)। यद्यपि वे कला, साहित्य, संस्कृति और सैन्य विषयों में यूनानी उपलब्धियों के प्रशंसक थे, उन्होंने भारतीय राजाओं, जैसे चंद्रगुप्त मौर्य व अशोक (तीसरी एवं चौथी शताब्दी बी सी ई), गुप्त सम्राटों (चौथी-पाँचवीं शताब्दी सी ई) तथा हर्ष (7वीं शताब्दी सी ई) की भी अत्यधिक प्रशंसा की है। उन्होंने लिखा है कि इन भारतीय राजाओं के शासन की तुलना यूरोप के श्रेष्ठ शासकों के साथ की जा सकती है।

हालांकि उनका विचार था कि हर्ष की मृत्यु के बाद विध्वंसकारी शक्तियाँ कार्य करने लगीं जिसका परिणाम भारतीय राजव्यवस्था के विघटन में निकला। बड़ी संख्या में छोटे-छोटे राज्यों का उदय हुआ जो निरंतर परस्पर युद्धरत रहते थे। इससे इस देश के संसाधनों का ह्रास हुआ। यह अराजक स्थिति कई सदियों तक जारी रही और इसने भारतीय राज्यों को इतना कमज़ोर बना दिया कि वे अरबों, तुर्कों और अफ़ग़ानों के आक्रमणों का प्रतिरोध नहीं कर सके। उनका तर्क था कि केवल केंद्रीय प्रशासन के कुछ संक्षिप्त कालों को छोड़कर भारतीय राजव्यवस्था और समाज की सामान्य प्रवृत्ति विघटन की रही है। उनके अनुसारः

> हर्ष की मृत्यु ने उन विघटन के बंधनों को ढीला कर दिया था जिन्होंने विघटनकारी शक्तियों को नियंत्रण में रखा था जो भारत में हमेशा विघटन का कार्य करने को तैयार रहती हैं और उनको अपना स्वाभाविक परिणाम पैदा करने का अवसर दिया। छोटे राज्य जिनकी सीमाएँ हमेशा बदलती रहती थीं और जो कभी न ख़त्म होने वाले युद्धों में लगे रहते थे। ऐसा था भारत जब चौथी शताब्दी बी सी ई में यूरोपीय पर्यवेक्षकों ने इसे पहली बार देखा था और ऐसा ही हमेशा से रहा है, केवल तुलनात्मक रूप से उन संक्षिप्त कालों को छोड़कर जिनमें एक प्रबल केंद्रीय सरकार ने राजव्यवस्था के इन परस्पर प्रतिकर्षी अणुओं को अपनी गति पर लग़ाम लगाने और एक श्रेष्ठतर नियंत्रण शक्ति के अधीन स्वयं को समर्पित करने को मजबूर किया।
> **सी. एच. फ़िलिप्स (संपा.) में उद्धृत ए. एल. बाशम, 1961ः 271**

इस प्रकार उनके अनुसार उदारतापूर्ण निरंकुशतावाद के रूप में केंद्रीय सत्ता को भारत में मौजूद स्वाभाविक विखंडन की प्रवृत्ति को नियंत्रित करने के लिए आरोपित करना ज़रूरी था। उनके अनुसार, 'केवल सर्वसत्तावादी सरकार को छोड़कर ... किसी भी प्रकार की सरकार भारतीय परिस्थितियों के लिए उचित नहीं थी'। इस प्रकार एकता और विधि के शासन को बनाए रखने और भारतीय लोगों को 'समाज की घृणित अवस्था' से बचाने के लिए ब्रिटिश शासन की आवश्यकता थी (उपाध्याय, 2016ः 444)। उनका दृढ़ कथन था कि भारत का उनका इतिहास 'पाठक को यह अनुभव कराएगा कि भारत हमेशा से किस प्रकार रहा है जब यह किसी सर्वोच्च सत्ता से मुक्त रहा है और यह पुनः किस प्रकार का होगा यदि उदारतापूर्ण निरंकुशतावाद, जिसने इसे अभी अपनी सशक्त पकड़ में रखा है, इसका हाथ छोड़ दे तो' (सी. एच. फ़िलिप्स (संपा.) में उद्धृत ए. एल. बाशम, 1961ः 271)।

बोध प्रश्न-2

1) माउंटस्टुअर्ट एल्फ़िन्स्टन और इलियट व डाउसन के विचारों व मतों के बीच समानताओं और विभिन्नताओं पर चर्चा कीजिए।

....

....

....

2) विंसेंट स्मिथ के इतिहास लेखन पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए।

....

....

....

17.4 सारांश

औपनिवेशिक इतिहासलेखन उन औपनिवेशिक प्रशासकों और विद्वानों द्वारा क्रमिक रूप से विकसित हुआ था जो औपनिवेशिक शासन की निरंतरता की आकांक्षा रखते थे। उनका इतिहास लेखन भारत को जानने, भारतीय इतिहास को यूरोपीय रूपों तथा शैलियों में ढालने तथा बौद्धिक प्रभुत्व क़ायम करने का एक प्रयास था। विभिन्न औपनिवेशिक इतिहासकारों के बीच कई प्रकार की भिन्नताएँ भी थीं। लेकिन, वे सभी आधुनिक पश्चिमी सभ्यता की श्रेष्ठता के प्रति आश्वस्त थे और सभी यह इच्छा रखते थे कि भारत में ब्रिटिश शासन सरलता से चलता रहे। दो शताब्दियों के बीच – मध्य 18वीं शताब्दी से 20वीं शताब्दी के मध्य तक – लिखे गए ये औपनिवेशिक इतिहास भारत में औपनिवेशिक शासन को विचारधारात्मक वैधता प्रदान करते थे।

17.5 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) देखें भाग 17.2

2) देखें भाग 17.3

बोध प्रश्न-2

1) देखें उप-भाग 17.3.2 और 17.3.3

2) देखें उप-भाग 17.3.4

17.6 संदर्भ ग्रंथ

गॉटलोब, माइकल, (संपा.) (2003) *हिस्टौरिकल थिंकिंग इन साउथ एशियाः अ हैंडबुक ऑफ़ सोर्सेज़ फ्रॉम कलोनीयल टाइम्ज़ टू द प्रैज़ेंट* (नई दिल्लीः ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

मित्तल, एस. सी., (1995) *इंडिया डिस्टॉर्टेडः अ स्टडी ऑफ़ ब्रिटिश हिस्टॉरीयंज़ ऑन इंडिया,* भाग 1 (नई दिल्ली : एम. डी. पब्लिकेशन).

फ़िलिप्स, सी. एच., (1961) *हिस्टॉरियंस ऑफ़ इंडिया, पाकिस्तान एंड सीलोन* (लंदन और न्यूयॉर्कः ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

उपाध्याय, शशि भूषण, (2016) *हिस्टॉरीओग्रफ़ी इन द मॉडर्न वर्ल्डः वेस्टर्न एंड इंडियन पर्सपेक्टिज़* (नई दिल्लीः ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

वाही, तृप्ता, (1990) 'हेनरी मेयर्स इलियटः अ रिप्रेज़ल', *जर्नल ऑफ़ द रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑफ़ ब्रिटेन एंड आयरलैंड,* 1: 64-90.

17.7 शैक्षणिक वीडियो

राइटिंग हिस्ट्री इन कलोनियल टाइम्स

https://www.youtube.com/watch?v=vMzMoG96YlQ

इकाई 18 राष्ट्रवादी*

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 राष्ट्रवादी लेखन की समझ

18.3 रामकृष्ण गोपाल भंडारकर

18.4 काशी प्रसाद जायसवाल

18.5 राधा कुमुद मुखर्जी

18.6 रमेश चंद्र मजूमदार

18.7 सारांश

18.8 शब्दावली

18.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

18.10 संदर्भ ग्रंथ

18.11 शैक्षणिक वीडियो

18.0 उद्देश्य

यह इकाई राष्ट्रवादी इतिहासकारों के लेखन से आपका परिचय कराती है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समर्थ होंगे:

- भारत में इतिहास लेखन के संदर्भ में राष्ट्रवादी होने के अर्थ की व्याख्या करने में,
- भारत के प्रमुख राष्ट्रवादी इतिहासकारों को समझ पाने में, और
- राष्ट्रवादी इतिहासकारों की प्रमुख कृतियों की चर्चा करने में।

18.1 प्रस्तावना

एक अकादमिक/शैक्षणिक विषय के रूप में इतिहासलेखन का यूरोप में विकास 19वीं शताब्दी में हुआ था। इतिहासकारों ने इतिहास लेखन की प्रविधि के आधारों का विकास किया था। वस्तुनिष्ठता तथा तथ्यों पर विश्वास करने के बजाय इतिहासकारों का लेखन उस समय के प्रभावी विचारों और विश्वासों से प्रभावित हुआ था। स्वयं की सभ्यता की श्रेष्ठता में विश्वास तथा आदिम व सभ्य लोगों में विभेद के विचारों का परिणाम दूसरी सभ्यताओं को यूरोपियों की तुलना में कमतर मानने के विश्वास में निकला। इस तरह के विचार की जड़ें प्रबोधन (Enlightenment) के दर्शन में निहित थीं। 19वीं शताब्दी में यूरोपीय ऐतिहासिक विचारों के सार्वभौमीकरण ने अन्य सभ्यताओं के मूल्यों को गतिहीन या इतिहास-विहीन बताकर उन्हें क्षति पहुँचाई। आधुनिकता यूरोप-केन्द्रीयता का पर्याय बन गई तथा यह आरम्भिक यूरोपीय राष्ट्रवादी लेखन में स्पष्ट झलकता है। यद्यपि भारत पर आक्रमण कर इसे औपनिवेशिक बना लिया गया था किंतु इसकी बहुत ही समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा रही थी जिसे औपनिवेशीकरण मिटा नहीं पाया था। भारत में ब्रिटिश शासकों ने ऐतिहासिक ज्ञान का उपयोग सत्ता को बनाए रखने तथा उसे वैध ठहराने के लिए किया था किंतु भारतीयों ने इतिहास के ज्ञान का उपयोग राष्ट्रीय चेतना के विकास तथा स्वतंत्रता के संघर्ष हेतु एक मुक्तिदायी माध्यम के रूप में किया। इसी पृष्ठभूमि में हम आपको राष्ट्रवादी इतिहासकारों के लेखन और किस प्रकार भारतीय विद्वानों ने यूरोप-केंद्रित दृष्टिकोण को नकार कर तथा सदियों से भारत में विकसित हुई सांस्कृतिक परम्परा की ओर ध्यान आकर्षित कर भारत के अतीत का एक आख्यान विकसित किया इससे परिचित कराएँगे।

* प्रो. स्वराज बासु, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

18.2 राष्ट्रवादी लेखन की समझ

पिछली इकाई में आप औपनिवेशिक (colonial) शासकों और बुद्धिजीवियों द्वारा भारतीय इतिहास के लेखन के विषय में पढ़ चुके हैं। साम्राज्यवाद तथा नस्लवाद ने स्थानीय लोगों की सांस्कृतिक पहचान का दमन किया और उपनिवेशित देश की ऐतिहासिक चेतना को आकार देने का प्रयास किया। लेखन के माध्यम से यह प्रभावशाली विचार पैदा किया गया कि प्राचीन भारत के लोगों को इतिहास का बोध नहीं था। 19वीं शताब्दी में इतिहास के एक पेशेवर विषय में बदलने के साथ ही औपनिवेशिक इतिहासलेखन उन लेखनों का संकेत करने लगा जो प्रभुत्व की औपनिवेशिक विचारधारा से प्रभावित थे। औपनिवेशिक शासकों द्वारा उपनिवेशित देशों के बारे में लिखने की रीति औपनिवेशिक शासन का औचित्य सिद्ध करने के तर्क से प्रेरित थी। जेम्स मिल, माउंटस्टुअर्ट एल्फ़िंस्टन, विंसेंट ए. स्मिथ तथा अन्य के द्वारा लिखे गए भारतीय इतिहास ने साम्राज्यवादी शक्ति के संरक्षण के अंतर्गत भारत की सभ्यता की ओर प्रगति की कहानी कहने का प्रयास किया। ऐतिहासिक लेखनी के माध्यम से औपनिवेशिक शासकों के इस 'सभ्यताकारी अभियान' ने आधुनिक पश्चिमी सभ्यता की श्रेष्ठता के विचार को स्थापित करने तथा ब्रिटिश शासन का आलोचना-मुक्त औचित्य सिद्ध करने का प्रयास किया। वास्तव में, जेम्स मिल का भारतीय इतिहास के हिंदू, मुस्लिम और ब्रिटिश कालों में काल-विभाजन के विचार का भारतीय इतिहासलेखन में गंभीर प्रभाव पड़ा और बाद में मिल के इस काल-विभाजन को प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक काल के पदों में बदल दिया गया। मिल का यह मत था कि हिंदुओं को इतिहास का बोध नहीं था तथा उनकी संस्कृति गतिहीन थी। उसने लिखा है, 'बिखरे हुए संकेतों से, जो यूनानी लेखन में दर्ज हैं, यह निष्कर्ष निकलता है कि हिंदू सिकंदर के आक्रमण के समय उसी प्रकार की पद्धति, समाज और ज्ञान की अवस्था में थे जिस अवस्था में उन्हें आधुनिक यूरोप के राष्ट्रों ने खोजा था'। औपनिवेशिक इतिहासलेखन में भारत के इस चित्रण ने भारतीयों को एक राष्ट्रीय दृष्टिकोण से भारतीय इतिहास लिखने हेतु उकसाया जिसमें राष्ट्रीय संस्कृति व ऐतिहासिक परम्परा का प्रतिनिधित्व हो।

राष्ट्रवादी ऐतिहासिक लेखन भारतीयों द्वारा भारत की परम्परा तथा सांस्कृतिक विरासत को एक समुचित ऐतिहासिक नज़रिए से चित्रित करने के प्रयास को प्रदर्शित करता है। राष्ट्रवादी दृष्टिकोण ने 19वीं शताब्दी के अंत से ऐतिहासिक स्रोतों के विश्लेषण पर आधारित ऐसे ऐतिहासिक आख्यान को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जिसने औपनिवेशिक ऐतिहासिक आख्यान के खोखलेपन को उजागर किया। भारतीयों ने ब्रिटिश लोगों द्वारा भारत में आयातित ऐतिहासिक ज्ञान तथा विचारों का स्वागत किया किंतु इसके साथ ही यूरोप-केंद्रित दृष्टिकोण पर सवाल भी खड़े किए और शास्त्रीय भारतीय ग्रंथों तथा अन्य ऐतिहासिक शोध-सामग्री के विश्लेषण पर आधारित भारत के अतीत का एक प्रति-आख्यान (counter-narrative) विकसित करने का प्रयास किया। राष्ट्रीय वैभव में गर्व के भाव ने राष्ट्रीय आत्मसम्मान को पुनर्स्थापित करने वाली ऐतिहासिक चेतना के सृजन में सहायता की। राष्ट्रवादी लेखन ने न केवल इतिहास लेखन में साम्राज्यवादी पक्षपात को उजागर किया, बल्कि औपनिवेशिक शासकों की विभेदकारी नीतियों के विरुद्ध लोकमत के निर्माण में भी सहायता की। साम्राज्यवाद के आर्थिक परिणामों का विश्लेषण करते हुए राष्ट्रवादी इतिहासलेखन ने स्वतंत्रता संघर्ष के लिए एक विचारधारात्मक आधार उपलब्ध कराया। यहाँ मैं उसका उल्लेख करना चाहूँगा जो स्वामी विवेकानंद ने इतिहास लेखन के महत्व के विषय में अलवर में कुछ युवाओं के समूह से कहा था। उन्होंने कहाः

> संस्कृत का अध्ययन करें किंतु इसके साथ ही पश्चिमी विज्ञानों का भी अध्ययन करें। सटीक होना सीखो मेरे युवा साथियों। पढ़ो और श्रम करो ताकि ऐसा वक्त आए जब तुम हमारे इतिहास को वैज्ञानिक आधार पर खड़ा कर सकोगे। अभी भारतीय इतिहास अव्यवस्थित है, इसमें कालानुक्रम की सटीकता नहीं है। अंग्रेज़ी लेखकों द्वारा लिखे गए हमारे देश के इतिहास केवल हमारे मस्तिष्क को कमज़ोर बनाने के अलावा और कुछ नहीं कर सकते क्योंकि ये केवल हमारे पतन की गाथा कहते हैं। कैसे कोई विदेशी जो हमारे तौर-तरीकों और प्रथाओं के बारे में या हमारे धर्म और दर्शन के बारे में बहुत कम जानता है भारत का एक विश्वसनीय, पक्षपात-रहित इतिहास लिख सकता है? स्वभावतः कई गलत धारणाएँ और मिथ्या-अभिप्राय उनके इतिहासों में स्थान पा लेते हैं। तथापि यूरोपियों ने हमें दिखाया है कि कैसे हम अपने प्राचीन इतिहास के शोध के कार्य में अग्रसर हो सकते हैं। अब यह हमारे ऊपर है कि स्वयं के लिए एक स्वतंत्र ऐतिहासिक शोध का रास्ता निर्मित करें, *वेदों, पुराणों* और भारत के अन्य प्राचीन विवरणों के अध्ययन के लिए, और इससे अपनी

> इस भूमि के सटीक सहानुभूतिपूर्ण आत्म-प्रेरक इतिहासों को लिखने हेतु अपने जीवन को क्रियाशील तथा अनुशासित करें। भारतीय इतिहास को लिखने का यह जिम्मा भारतीयों का है, अतः स्वयं को हमारे विलुप्त तथा छुपे हुए खजाने को अंधकार से पुनः ढूँढ लाने के इस कार्य को करने हेतु तैयार करो। जिस प्रकार अपनी संतान को खो देने पर कोई व्यक्ति तब तक चैन से नहीं बैठता है जब तक वह उसे पुनः ढूँढ नहीं लेता, उसी प्रकार तुम अपने इस उद्यम को तब तक जारी रखो जब तक लोगों की चेतना में तुम भारत के गौरवशाली अतीत को पुनर्जागृत नहीं कर देते हो। यह एक सच्ची राष्ट्र शिक्षा होगी और इसके बढ़ने के साथ ही एक सच्ची राष्ट्रीय भावना जागृत हो पाएगी
>
> **'हिस्ट्री राइटिंग एंड नैशनलिज़्म', *प्रबुद्ध भारत*, अगस्त, 2005 में उद्धृत**

स्वामी विवेकानंद ने जो कहा वह व्यवस्थित शोध के माध्यम से भारत की गौरवशाली परम्परा को प्रकाशित करते हुए भारत को एक नवजीवन देने की आवश्यकता तथा भारतीयों के बीच गौरव का बोध पैदा करने व एक सच्ची राष्ट्रीय भावना का विकास करने की आवश्यकता का आभास देता है। यह इस तथ्य को सिद्ध करता है कि भारत की सभ्यता के वास्तविक भाव को ग्रहण करते हुए भारतीय बुद्धिजीवियों के बीच भारत के अतीत को नए सिरे से देखने की भावना पनप रही थी, औपनिवेशिक शासकों के माध्यम से नहीं बल्कि इसके महान् शास्त्रीय ग्रंथों के माध्यम से। यह परियोजना थी जिसे 19वीं शताब्दी के आखिरी हिस्से में कुछ भारतीय इतिहासकारों ने शुरू किया था। यह अनुभव किया गया कि भारतीय राष्ट्र के निर्माण में इतिहास एक अनिवार्य तत्व है। इतिहास को भारतीयों द्वारा औपनिवेशिक शासकों द्वारा किए गए विरूपण से दूर करते हुए भारत के अतीत के पाठ के माध्यम से पुनर्सृजित करने की आवश्यकता थी। हमें एक के बाद एक होने वाले विदेशी आक्रमणों के बारे में बताया गया किंतु मुश्किल से ही इसका कहीं उल्लेख किया गया कि किस प्रकार भारतीयों ने इन विदेशी आक्रमणों का प्रतिरोध किया। हमें हमारी गतिहीन सामाजिक व्यवस्था के बारे में बताया गया किंतु भारत की सभ्यता के अनूठेपन के विषय में नहीं बताया गया। राष्ट्रवादी इतिहासकारों का मुख्य सरोकार ऐतिहासिक अनुसंधान के आधार पर इन विरूपणों को दूर करना था। राष्ट्रवादी इतिहास को पुराने साम्राज्यवादी इतिहासलेखन के दावों पर सवाल करना था और साथ ही 20वीं शताब्दी की शुरुआत से इतिहास लेखन में जारी विभेदकारी प्रवृत्ति में सुधार भी करना था। राष्ट्रीय इतिहास लेखन की इस परियोजना की भावना को स्वयं रवींद्रनाथ द्वारा लिखी गई इस टिप्पणी से बेहतर कोई अभिव्यक्त नहीं कर सकता है, 'मेरे देश को सत्यता में जानने के लिए उस काल की यात्रा करनी होगी जब इसने अपनी आत्मा की अनुभूति की और इस क्रम में अपनी भौतिक सीमाओं को पार किया, जब इसने अपने अस्तित्व को उज्ज्वल उदारता के रूप में प्रकट किया जिसने पूर्वी क्षितिज को इस प्रकार प्रकाशित किया कि उन अनजान तटों के लोगों ने इसे किसी अपने की तरह अनुभव किया, वे लोग जो जीवन के महान् आश्चर्य की भोर में जागे थे ...' ('प्रस्तावना', *जर्नल ऑफ़ ग्रेटर इंडिया सोसायटी, 1934*)। राष्ट्रवादी इतिहासलेखन को इस प्रकार भारतीय पहचान तथा राष्ट्रीय भावना के विकास में सहायता करने के विशेष उद्देश्य से भारतीय इतिहास के औपनिवेशिक निरूपण के विरुद्ध एक प्रत्युत्तर के रूप में देखा जा सकता है। यद्यपि राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने अभिलेख-शास्त्रीय, मुद्रा–शास्त्रीय तथा पुरातात्विक शोध पर आधारित पश्चिमी ऐतिहासिक अनुसंधान पद्धतियों को अपनाया किंतु इसके साथ ही विभिन्न प्रकार के स्रोतों के पाठ के आधार पर वस्तुनिष्ठ तरीके से भारत के अतीत का एक आख्यान गढ़ने का प्रयास किया।

हम इसके बाद आने वाले भागों में आपका परिचय कुछ महत्वपूर्ण राष्ट्रवादी इतिहासकारों के लेखन-कार्य से कराएँगे। राष्ट्रवादी इतिहासकार वे हैं जिनकी लेखनी में राष्ट्रवादी पक्षधरता है और जिन्होंने औपनिवेशिक शासन के दौरान भारतीय इतिहास लिखा था। उनके दृष्टिकोण तथा मनोवृत्ति ने राष्ट्रीय भावनाओं को बढ़ावा देने तथा राष्ट्रीय पहचान को मज़बूती प्रदान करने में सहायता प्रदान की। उनके महत्व तथा योगदान को औपनिवेशिक प्रभुत्व की पृष्ठभूमि में बेहतर समझा जा सकता है। अपनी लेखनी द्वारा भारत की प्राचीन वैभवपूर्ण सभ्यता का आह्वान करने के माध्यम से वे भारतीय बुद्धिजीवियों को भौगोलिक विभाजन के आर-पार भारत की आधारभूत अखंडता को महत्व देने के लिए प्रेरित करने में सफल हुए। राजेंद्रलाल मित्रा को भारत में राष्ट्रवादी इतिहास लेखन का अग्रदूत माना जाता है जिन्होंने ओडिशा तथा बंगाल के इतिहास, कुछ वैदिक ग्रंथों और *इंडो-आर्यन्स* शीर्षक से एक पुस्तक का प्रकाशन किया था। वे भारत की प्राचीन सांस्कृतिक परम्परा के साथ-साथ जोंस तथा कोलब्रुक जैसे उन प्राच्यवादी विद्वानों से भी प्रभावित थे जिनका प्राच्य इतिहास के महिमामंडन में

विश्वास था। किंतु मित्रा ने भारत के प्राचीन समाज की व्याख्या करने हेतु तार्किक तथा वैज्ञानिक पद्धति अपनायी। हम आपको कुछ महत्वपूर्ण राष्ट्रवादी इतिहासकारों से परिचित कराएँगे जिन्होंने ब्रिटिश लेखकों द्वारा किए गए विरूपण के प्रत्युत्तर में प्राचीन भारत का वस्तुनिष्ठ इतिहास लिखने का प्रयास किया।

18.3 रामकृष्ण गोपाल भंडारकर

आर. जी. भंडारकर (1837-1925) प्राचीन भारत के आरंभिक इतिहासकारों में थे जिन्होंने इतिहास लेखन में शोध सामग्री के आलोचनात्मक उपयोग का विकास किया था। इतिहास के प्रति अपने दृष्टिकोण में भंडारकर जर्मन इतिहासकार रांके (Ranke) से प्रभावित थे। उन्होंने उस समय तक उपलब्ध शोध सामग्री के व्यापक और आलोचनात्मक विश्लेषण पर आधारित बहुत से अन्य शोध-पत्र और पुस्तकों के लेखन के साथ ही *अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ द डेक्कन* (1884) और *अ पीप इनटू द अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया* (1890) नामक ग्रंथों की रचना की थी। वह एक प्रख्यात भारतविद थे तथा भारत की प्राचीन संस्कृति, साहित्य तथा भाषा पर उनके विभिन्न शोध-पत्र प्रमुख शोध-पत्रिकाओं में छपे थे जिन्होंने भारतीय सभ्यता को समझने के लिए नई अंर्तदृष्टि प्रदान की थी। एक उत्कृष्ट विद्वान होने के साथ-साथ वह एक महान् सामाजिक सुधारक भी थे और सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध उदार विचारों के प्रसार हेतु **परमहंस सभा** से भी जुड़े थे। उन्होंने इतिहास लेखन हेतु आलोचनात्मक दृष्टिकोण का विकास किया। उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन भारतीय इतिहास, संस्कृति तथा संस्कृत भाषा के अध्ययन हेतु समर्पित कर दिया। भारत के अतीत में सब कुछ अच्छा देखने के बजाय उन्होंने युवा शोधार्थियों से अतीत के अन्वेषण हेतु एक आलोचनात्मक तथा तुलनात्मक पद्धति विकसित करने को कहा। युवा विद्वानों को दिए गए अपने एक व्याख्यान में उन्होंने यह अवलोकन किया थाः

> एक समालोचनात्मक अन्वेषक वह है जो किसी घटना के विवरण को वैसे ही नहीं स्वीकार लेता है जैसा कि उसके सामने प्रस्तुत होता है। वह इसे कुछ निश्चित परीक्षणों की कसौटी पर कसता है जो उसके सत्य या असत्य होने को सिद्ध कर सकें। वह यह सुनिश्चित करने की सावधानी बरतता है कि कोई विवरण देने वाला उस घटना-विशेष का प्रत्यक्ष साक्षी रहा है या नहीं, और अगर रहा है तो वह व्यक्ति निष्पक्ष है या नहीं ... किसी विवरण को ऐतिहासिक सत्य के रूप में स्वीकारने से पूर्व उसे अवश्य ही स्वयं से यह पूछना चाहिए कि क्या इसके लेखक का उद्देश्य पाठक को आनंद से भर देना और उसमें आश्चर्य के भाव को जगा देना भर तो नहीं था, या घटनाओं को जैसे वे हुई थीं वैसे ही दर्ज करना था।

हम उनके विश्वास का प्रतिबिम्ब उनकी पुस्तक *अ पीप इनटू द अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया* के परिचय में पाते हैं जब वह लिखते हैं कि 'अन्य कुछ नहीं बल्कि कोरा सत्य ही उसका उद्देश्य होना चाहिए'। इस पुस्तक में सिक्कों, अभिलेखों, पुरातात्विक अवशेषों तथा विदेशी यात्रियों के विवरणों को इतिहास लेखन हेतु स्रोतों के रूप में प्रयुक्त करने के महत्व की व्याख्या करते हुए उन्होंने लिखा थाः

> इन सभी सामग्रियों का प्रयोग करते हुए, लेकिन आलोचनात्मक शक्ति का बेहतर प्रयोग करना चाहिए। कोई भी जो इस शक्ति को धारण नहीं करता है इनका उचित उपयोग नहीं कर सकता है। बहुत वर्षों पहले मैंने अध्ययन की आलोचनात्मक और तुलनात्मक पद्धति पर एक व्याख्यान दिया था जो प्रकाशित भी हुआ है। जो मैंने वहाँ कहा है मैं उसमें केवल यह जोड़ूंगा कि इन सभी सामग्रियों को व्यवहार में लाते हुए साक्ष्य के ऐसे सिद्धांतों के साथ आगे बढ़ना चाहिए जिस प्रकार किसी न्यायाधीश द्वारा इनका प्रयोग किया जाता है। सर्वप्रथम तो निष्पक्ष होने की आवश्यकता है, बिना अपने सामने उपलब्ध सामग्री में ऐसा कुछ खोजने का विशेष पूर्वाग्रह रखे कि इससे उसकी नस्ल या उसके देश के गौरव में वृद्धि होगी, और न ही देश या उसके लोगों के विरुद्ध किसी पूर्वाग्रह से संचालित होना चाहिए। कुछ नहीं बल्कि कोरा सत्य ही उसका उद्देश्य होना चाहिए और प्रत्येक प्रकरण में उसे अपने सम्मुख उपस्थित साक्ष्य की विश्वसनीयता का निर्धारण करना चाहिए और उसके द्वारा प्रकट किए गए पहलू के संभव या असंभव होने का निर्धारण भी करना चाहिए। उसे यह सुनिश्चित करना चाहिए कि क्या वह घटना का प्रत्यक्षदर्शी था या उसका समकालीन साक्षी था और क्या किसी घटना का वर्णन करने में वह अतिशयोक्ति के भाव से भरा था या किसी आश्चर्य के प्रभाव में बह गया था। वर्तमान में प्रचलित किसी भी दंतकथा को ऐतिहासिक रूप से सत्य नहीं मानना चाहिए लेकिन इनमें छुपे हुए किसी संभावित सत्य को जानने का प्रयास किया जाना चाहिए, दूसरे प्रकार के साक्ष्यों के आलोक में।

स्वयं द्वारा भारत के इतिहास लेखन के कारण की व्याख्या करते हुए उन्होंने इस तथ्य की ओर ध्यान दिलाया है कि भारत का कोई समुचित लिखित इतिहास नहीं था यद्यपि कुछ दंतकथाएँ, मिथक,

इतिवृत्त और अतीत के शासकों के गौरवगान उपलब्ध थे। इस अंतराल को भरने के लिए उन्होंने स्वयं के ऊपर भारतीय सभ्यता का एक वस्तुनिष्ठ इतिहास लिखने का उत्तरदायित्व लिया था। उन्होंने लिखा हैः

> मेरा विचार है कि यह तयशुदा सी बात है कि एक भारतीय जिसे अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त हुई है और जिसका यूरोप के प्राचीन इतिहास से परिचय कराया गया है वह स्वाभाविक रूप से स्वयं के देश के प्राचीन इतिहास से परिचित होने की इच्छा रखता होगा, यह जानने की इच्छा कि किनके द्वारा और कैसे प्राचीन काल में यह देश शासित हुआ था और इसके धार्मिक तथा सामाजिक संस्थान किस प्रकार विकसित हुए थे या किन मूलगामी परिवर्तनों से यह देश गुज़रा था; लेकिन इस इच्छा की पूर्ति के साधनों का नितांत ही अभाव है। दुर्भाग्यवश, भारत का कोई लिखित इतिहास नहीं है। जैनों तथा अन्य द्वारा उन राजाओं तथा राजकुमारों का संदर्भ देने वाले कुछ इतिवृत्त उपलब्ध हैं जो आठवीं से बारहवीं शताब्दी ईसा संवत के बीच गुजरात और राजपूताना के क्षेत्र में राज्य कर रहे थे। कुछ राजाओं के व्यक्तिगत जीवन-चरित, जैसे बाण *का हर्षचरित* तथा बिल्हण का *विक्रमांकदेवचरित* भी हैं। इनमें से प्रथम रचना का नायक उत्तरी भारत पर सातवीं शताब्दी के प्रथम उत्तरार्द्ध में शासन करने वाला शासक था तो दूसरे का दक्षिण भारत में बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में शासन करने वाला शासक था। *पुराणों* में कुछ राजवंशों के वंशानुचरित दिए गए हैं। इन कुछ अपवादों के साथ कुछ समय पूर्व तक हमें मोहम्मडन साम्राज्य की स्थापना से पूर्व भारतीय प्रांतों के इतिहास के विषय में कुछ भी जानकारी नहीं थी। लेकिन यूरोपीय तथा कुछ भारतीय विद्वानों और पुराविशेषज्ञों के अनुसंधानों ने इस अंधयुग के ऊपर पर्याप्त प्रकाश डाला है। अब तक एकत्र किए गए इस ज्ञान को बहुत संतुष्टकारी नहीं माना जा सकता है या उतना अच्छा नहीं माना जा सकता है जितना कि लिखित पुस्तकों के माध्यम से उपलब्ध हुआ होता (*अ पीप इनटू द अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया*)।

भंडारकर ने अपने लेखन के माध्यम से भारत के अतीत के आख्यान के निर्माण हेतु शोध सामग्री के आलोचनात्मक उपयोग को विकसित करने का प्रयास किया, बजाय कि दंतकथाओं और गौरव-गाथाओं में सहज विश्वास कर लेने के। अपनी पुस्तक की प्रस्तावना में, जिसका ऊपर संदर्भ दिया गया है, उन्होंने स्रोत-सामग्री के महत्व तथा ऐतिहासिक अनुसंधान के विभिन्न उपकरणों का किस प्रकार वस्तुनिष्ठता के साथ उपयोग करना चाहिए की व्याख्या की। विभिन्न स्रोत-सामग्रियों के अध्ययन पर आधारित वस्तुनिष्ठ ऐतिहासिक अनुसंधान को शुरू करने में उनके योगदान ने भारत के अतीत को उद्घाटित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी और भारतीय इतिहास की यूरोपीय आलोचना को एक तार्किक प्रत्युत्तर प्रदान किया था।

बोध प्रश्न-1

1) राष्ट्रवादी इतिहासकारों के तर्कों की व्याख्या कीजिए।

....

....

....

2) इतिहास लेखन में स्रोतों के महत्व पर टिप्पणी लिखिए जैसा कि आर. जी. भंडारकर ने विवेचित किया है।

....

....

....

18.4 काशी प्रसाद जायसवाल

लंदन में अपनी पढ़ाई के दौरान राष्ट्रवादी उत्साह से प्रेरित होकर के. पी. जायसवाल (1881–1937) ने प्राचीन भारत के इतिहास की समझ में रुचि को विकसित किया। पेशे से वह एक वकील (barrister) थे और उन्होंने अपना व्यावसायिक जीवन कलकत्ता उच्च न्यायालय से शुरू किया और बिहार के बंगाल से अलग हो जाने के बाद वह पटना आ गए थे। भारत के इतिहास में अपनी दिलचस्पी को पूरा करने के लिए उन्होंने अभिलेख-शास्त्र और पुरातत्व-शास्त्र का प्रशिक्षण लिया था। डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने एक बार उनके विषय में कहा था कि 'वह अपने स्वभाव और पसंद से एक इतिहासकार थे जबकि मजबूरीवश एक वकील। स्वयं के रुझान तथा प्रतिभा ने उन्हें इतिहास की ओर खींचा तो सांसारिक ज़रूरतों ने कानून की अदालतों तथा कानून के प्रतिवेदनों की ओर...।' जायसवाल हिंदू विधि

के ऐतिहासिक विकास को चिह्नित करने के लिए उत्सुक थे और इस हेतु वह संवैधानिक संस्थाओं तथा उन संस्थाओं, जो विभिन्न कालों में विकसित हुईं, के मूल को सामने लाना चाहते थे। इसका परिणाम उनकी महत्वपूर्ण कृति *हिंदू पॉलिटी* (1918) के प्रकाशन में निकला। इस पुस्तक में उन्होंने यह तर्क विकसित किया कि संसदीय तथा लोकतांत्रिक सरकारें प्राचीन भारत में कार्यरत थीं जिनमें प्रतिनिध्यात्मक सभाएँ भी अस्तित्वमान थीं। जायसवाल से पूर्व प्राच्यवादी विद्वानों, जैसे मैक्स मूलर, ने यह प्रदर्शित किया था कि अब तक ज्ञात किसी भी न्यायशास्त्र में हिंदू विधि का मूल सबसे प्राचीनतम काल में स्थित था। किंतु यह जायसवाल ही थे जिन्होंने यह सिद्ध किया कि हिंदू राजव्यवस्था एक सांविधानिक इतिहास की व्यवस्था पर आधारित थी तथा शासकों ने समाज तथा राजव्यवस्था को शासित करने के लिए एक विधिक व्यवस्था का विकास किया था। उन्होंने तर्क दिया कि प्रतिनिधित्व के सिद्धांतों पर आधारित भारतीय गणतंत्र और सामूहिक निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया प्राचीन विश्व में यहीं सबसे पुरानी थी। *हिंदू पॉलिटी* में जिन विषयवस्तुओं के ऊपर चर्चा की गई है वे इस प्रकार हैं:

1) वैदिक काल की संप्रभु सभा
2) वैदिक काल की न्यायिक सभा
3) हिंदू गणतंत्र राज्य
4) हिंदू राजत्व
5) *जनपद*
6) हिंदू राजतंत्र के अधीन *मंत्री-परिषद*
7) कराधान
8) हिंदू साम्राज्यिक व्यवस्थाएँ
9) हिंदू सांविधानिक परंपराओं का पतन तथा पुनरुत्थान

उन्होंने लिखा है, 'हमारी जानकारी के स्रोत हिंदू साहित्य के व्यापक क्षेत्र में – वैदिक, शास्त्रीय तथा प्राकृत और इस देश के अभिलेख तथा मुद्रा-संबंधी दस्तावेज़ों में – विस्तृत हैं। यह भी हमारा सद्भाग्य है कि हिंदू राजव्यवस्था पर कुछ तकनीकी निबंध-ग्रंथ हमें मूल रूप में उपलब्ध हैं' (*हिंदू पॉलिटी*)। उन्होंने संस्कृत ग्रंथों और अभिलेखों का उपयोग औपनिवेशिक इतिहासकारों द्वारा गढ़ी गई हिंदू राजव्यवस्था की छवि के विपरीत हिंदू राजव्यवस्था पर अपने तर्क को विकसित करने के लिए किया। हिंदू विधि तथा न्यायशास्त्र को समझने हेतु उनके योगदान को इस क्षेत्र में अग्रणी माना जाता है। उनके विचारों ने राष्ट्रवादी इतिहासलेखन के विकास में सहायता की। अपनी रचनाओं के माध्यम से उन्होंने भारत में ब्रिटिशों के आगमन से पूर्व भारत में प्राच्य निरंकुशतावाद के प्रचलित होने के मिथक का खंडन किया। उन्होंने अपनी कृति में प्राचीन सभ्यता की शुरुआत से ही भारत में स्व-शासन के प्रचलन को सिद्ध किया था। शुरुआती बौद्ध स्रोतों, कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* तथा *महाभारत* का, साथ ही यूनानी स्रोतों का, संदर्भ देकर उन्होंने भारत में छठी शताब्दी बी सी ई से ही गणतंत्र की परम्परा के अस्तित्व के पक्ष में तर्क दिया था। उनके अनुसार प्रतिनिधित्व का सिद्धांत भी वैदिक युगों जितने पुरातन समय से ही प्रचलन में रहा था। उन्होंने ***पौर*** तथा ***जनपद*** को लोगों की संप्रभु सभाओं के रूप में चिह्नित किया था। उन्होंने लिखा है, 'यहाँ तक कि कौटिल्य भी, जो राजतंत्र का बड़ा पक्षधर है, यह कहता है कि राज्य के मामलों की मंत्रियों के परिषद में चर्चा की जानी चाहिए और जो भी बहुमत की राय हो राजा को उसका निर्वाह करना चाहिए। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि यह नियम *मंत्री-परिषद्* से भिन्न एक मंत्रिमंडल के प्रावधान के बावजूद था' (*हिंदू पॉलिटी*)। *हिंदू पॉलिटी* के अतिरिक्त उनकी अन्य महत्वपूर्ण ऐतिहासिक कृति *हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया 150 ए.डी. टू 350 ए.डी.* 1933 में प्रकाशित हुई थी। उन्होंने यह स्थापित करने का प्रयास किया कि लोकतंत्र भारत की प्राचीन राजनीतिक परम्परा का अविभाज्य अंग रहा था।

18.5 राधा कुमुद मुखर्जी

राधा कुमुद मुखर्जी (1884-1964) अपनी गहन और बहुमुखी विद्वता के लिए जाने जाते हैं। उनके भारतीय शास्त्रीय ग्रंथों के विपुल ज्ञान और प्रकृति तथा संस्कृति के बीच संबंध की उनकी समझ ने

उन्हें भारत के अतीत के संबंध में औपनिवेशिक आख्यान के विपरीत भारतीय राष्ट्र-राज्य के आधार के रूप में भारत की आधारभूत अखंडता का आख्यान विकसित करने हेतु प्रोत्साहित किया। अपनी बहुचर्चित कृति *द फ़ंडामेंटल यूनिटी ऑफ़ इंडिया* में, जो 1914 में प्रकाशित हुई थी, उन्होंने तर्क दिया था कि भारत का विचार और इसकी आधारभूत अखंडता इसकी प्राचीन सभ्यता का एक अंतर्निहित अंग रही है। औपनिवेशिक इतिहासकारों के लेखन द्वारा लोकप्रिय बनाए गए इस विचार कि 'भारत मात्र पृथक जन-समूहों, परंपराओं और मूल्यों का एक समुच्चय है, जो एक दूसरे के साथ अस्तित्व में बने रहे हैं, बिना किसी सामूहिक राष्ट्र-बोध के', के विपरीत मुखर्जी ने भारत की संस्कृति तथा इसकी सभ्यता के क्रमिक विकास में प्रतिबिंबित होने वाली भारत की आधारभूत अखंडता की ओर ध्यान आकर्षित किया था। मुखर्जी ने देशज स्रोतों का उपयोग करते हुए भारत के अतीत के विवरण को विकसित करने का प्रयास किया जो भारत की समृद्ध परम्परा की ओर संकेत करता था, भले ही भारत में किसी का भी शासन रहा हो। वह भारत की भौगोलिक सीमाओं के भीतर रहने वाले सभी लोगों के बीच सांस्कृतिक अखंडता पर विश्वास करते थे। उनके मत में 'भारतीय राष्ट्रवाद', जो उपनिवेश-विरोधी आंदोलन में प्रकट हो रहा था, का अस्तित्व औपनिवेशिक शासन के आगमन से पूर्व भी था। उनके अनुसार यह राष्ट्रीय चेतना भारत की व्यापक विविधता के बावजूद आधारभूत सांस्कृतिक अखंडता में दृश्यमान होती थी और अपने तर्क के पक्ष में उन्होंने *वेदों* और *पुराणों* का ऐतिहासिक दस्तावेज़ों के रूप में संदर्भ दिया है। मंत्रों और अनुष्ठानों में निहित लोकप्रिय स्मृति तथा विभिन्न क्षेत्रों में फैले हुए तीर्थ-स्थानों के द्वारा इस सभ्यता की एकल पहचान की ओर संकेत होता है। उनकी अन्य कृतियों, जैसे *नेशनलिज़्म इन हिंदू कल्चर, द हिंदू सिविलाइज़ेशन*, में उन्होंने भारत की सभ्यता की एकता के विचार को और अधिक विस्तार दिया है। यहाँ हम भारत की आधारभूत अखंडता के उनके विचार को समझने के लिए उनके लेखन का एक संदर्भ देंगे। उन्होंने लिखा हैः

> लेकिन दुर्भाग्यवश यह किसी भी तरह आसान नहीं रह गया है कि भारत को एक एकल-राष्ट्र के रूप में देखा जाए। भारतीय मन भारत के किसी अन्य चित्र से उतना अधिक परिचित नहीं है जितना कि उससे जिसमें इसे एक महाद्वीप के रूप में चित्रित किया गया है या किसी एक देश के बजाय कई देशों के समूह के रूप में। क्योंकि यही चित्र है जो हमारे विद्यालयों में पढ़ाई जाने वाली भूगोल की अधिकांश मानक पुस्तकों में प्रस्तुत किया गया है। भारतीय विद्यालयों के लिए लिखी गई किसी अंग्रेज़ी लेखक की भूगोल की पाठ्यपुस्तक स्वयं को इन टिप्पणियों के साथ शुरू करती हैः 'आमतौर पर भारत को एक एकल-देश के रूप में समझा जाता है या बताया जाता है किंतु यह सत्य नहीं है, इसके बजाय भारत कई देशों का एक समूह है।' महान् आंग्ल-भारतीय (Anglo-Indian) जानकार सर जॉन स्ट्रैचे के अनुसार, 'भारत के विषय में सीखने की यह एक प्राथमिक और सर्वाधिक अनिवार्य चीज़ है कि भारत या भारत जैसा कोई देश न तो अस्तित्व में है न कभी अस्तित्व में रहा था जिसमें यूरोपीय विचार के अनुसार, किसी भी प्रकार की भौतिक या राजनीतिक एकता विद्यमान रही हो।' यद्यपि इस बिंदु पर आंग्ल-भारतीय मत किसी भी तरह एकमत नहीं रहा है। आरंभिक भारतीय इतिहास के एक सुविख्यात जानकार विंसेंट ए. स्मिथ स्वयं अपने विचारों को एक अलग ढंग से पेश करते हैंः 'भारत, जो समुद्रों और पर्वतों से घिरा हुआ है, निर्विवाद रूप से एक भौगोलिक इकाई है और इसे उचित ही इस एक नाम से पुकारा जाता है।' चिशोल्म (Chisholm), जो भूगोल के एक जाने-माने जानकार हैं, के शब्द भी समान रूप से सकारात्मक तथा प्रबल हैंः 'दुनिया का कोई भी दूसरा हिस्सा स्वयं को इतने बेहतर तरीके से परिभाषित नहीं करता है जितना कि बर्मा को छोड़कर शेष भारत। यह क्षेत्र वास्तव में अपनी भौतिक विशेषताओं तथा जलवायु में विरोधाभासों को लिए हुए है – किंतु विशेषताएँ, जो इसे अपने आस-पास के क्षेत्रों से बिल्कुल अलग बनाती हैं, इतनी स्पष्ट हैं कि उन्हें अनदेखा नहीं किया जा सकता है...'।
>
> लेकिन सामान्यतः जिस बात को नहीं जाना या पहचाना गया है वह यह है कि आधारभूत अखंडता का यह विचार ब्रिटिश शासन से काफ़ी पुराना है। यह कोई नवीन विकासक्रम या कोई नई खोज नहीं है बल्कि इसका इतिहास सुदूर प्राचीन काल तक जाता है। ऐसे कई साक्ष्य हैं जो यह दिखाते हैं कि भारतीय धर्म, संस्कृति व सभ्यता के महान् संस्थापक स्वयं अपनी इस विशाल मातृभूमि की भौगोलिक अखंडता के प्रति सचेत थे और विभिन्न तरीकों से इसे लोकप्रिय चेतना में समाहित करने का प्रयास करते थे...
>
> *भारतवर्ष* की उत्पत्ति *भारत* से हुई है जिस प्रकार रोम की उत्पत्ति रोमुलस से हुई है। *भारत* भारतीय इतिहास तथा परंपरा में एक महानायक था, जिस प्रकार रोमुलस रोम में था। *ऋग्वेद* सर्वप्रथम एक शक्तिशाली *आर्य* जनजाति/जन के मुखिया के रूप में उसका उल्लेख करता है जिसने उन संघर्षों तथा लड़ाइयों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी जिनके माध्यम से *आर्य* राजव्यवस्था तथा संस्कृति भारतीय इतिहास के प्रभात की बेला में एक समुचित आकार ग्रहण कर सकी थी। *ऐतरेय*

ब्राह्मण उसके अभिषेक तथा तदनंतर विजयों के सिलसिले का उल्लेख करता है जिसका परिणाम उसके अधिराजत्व में निकला तथा जिसे *अश्वमेध* यज्ञ के आयोजन के माध्यम से विधिवत मान्यता दी गई। इस कथा का अनुसरण *श्रीमद् भागवत्* में भी किया गया जिसमें उसे *अधिराट* और *सम्राट* अर्थात राजाओं का राजा की उपाधि दी गई है और उसके द्वारा कई जातियों, जनजातियों और राज्यों जैसे **किरात, हूण, यवन** तथा **पौंड्रक** तथा ऐसे ही अन्य को अधीन बनाने तथा अंततः संसार को सार रूप से असार जानकर संन्यास लेने का वर्णन करता है। भारत, इस प्रकार, इस देश में निवास करने वाले विविध प्रकार के लोगों के सम्मुख उठ खड़ा हुआ। इस देश को उसके नाम से जाना जाता है उस प्रभावशाली *आर्य* जाति का प्रतिनिधित्व करने तथा उसे साकार रूप देने के कारण जो सम्पूर्ण देश को अपनी सत्ता का उपनिवेश बनाने तथा इसके विभिन्न भागों को एक सर्व-स्वीकार्य संस्कृति तथा सभ्यता के एकता के सूत्र में बाँधने वाले अनुशासन के अधीन लाने का कार्य तेज़ी से सम्पन्न कर रही थी। *भारतवर्ष*, इस प्रकार, आर्यकृत भारत का दूसरा नाम था, ऐसी अनुकूल उर्वर भूमि जहाँ आर्य सभ्यता ने स्वयं का बीजारोपण किया तथा अपने पल्लवन को प्राप्त हुई। चुनिंदा निवास-स्थान जिसे मानव सभ्यता के अग्रदूतों ने अपनी विशिष्ट विद्वता की अभिव्यक्ति तथा उद्यम हेतु अपनाया था और भारत को इस आरंभिक पुनर्जागरण का सुविधापूर्ण प्रतीक, एक बोधगम्य चिह्न, माना गया था। साथ ही इस नए विचार तथा नए विश्वास की विजय का, जो उनके उपयुक्त साहित्य, अनुशासन और सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक संस्थानों में अभिव्यक्त होता था, एक सांस्कृतिक एकता को आरोपित करने की उपलब्धि और समृद्ध, बहुविध रूपों पर व्याप्त हो जाने का भी जिसके चारों ओर, जैसे एक संघीय व्यवस्था में होता है, विभिन्न पंथ, मत तथा संस्कृतियाँ अपनी-अपनी चारित्रिक विशेषताओं तथा श्रेष्ठता को सहेजने की उदारता लिए हुए एकत्र हुईं तथा इस केंद्रीय संस्कृति को सुसमृद्ध करने में अपने हिस्से का योगदान दिया।

***द फ़ंडामेंटल यूनिटी ऑफ़ इंडिया*, आर. के. मुखर्जी**

उन्होंने तर्क दिया कि भारत को ब्रिटिश 'सभ्यताकारी अभियान' की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि यह पहले से ही 'सभ्य' था और इसका सभ्यताकारी प्रभाव ब्रिटिश लोगों के आने से पूर्व ही दक्षिण-पूर्व एशिया के क्षेत्र में विस्तृत था। उन्होंने भारत की भौगोलिक एकता का संदर्भ दिया और यह तर्क प्रस्तुत किया कि भारत की एकता से ब्रिटिश सत्ता का कुछ भी लेना-देना नहीं है जो प्राचीन भारत के हिंदुओं की चेतना में पर्याप्त रूप से विद्यमान रही है। उनके विचारों ने राष्ट्रवादी विचारों को बहुत गहरे रूप से प्रभावित किया।

18.6 रमेश चंद्र मजूमदार

आर. सी. मजूमदार (1888-1980) ने भारत के इतिहास और बंगाल के इतिहास पर प्राचीन समय से लेकर स्वतंत्रता संघर्ष तक भारतीय इतिहास और संस्कृति के विभिन्न पहलुओं पर व्यापक रूप से लेखन-कार्य किया था। उन्होंने अपने लेखन की शुरुआत भारत के शास्त्रीय (classical) युग तथा प्राचीन भारत में नैगमिक (corporate) जीवन से की थी तथा भारत के स्वतंत्रता संघर्ष पर तीन भागों में लिखे गए इतिहास की कृति के साथ इसको परिणत किया। अपनी पुस्तक *एंशिएंट इंडियन कॉलोनीज़ इन द फ़ार ईस्ट* (1927) में उन्होंने दक्षिण-पूर्व एशिया में हिंदू सभ्यता के विस्तार की व्याख्या की थी। सुदूर पूर्व में भारतीय सभ्यता के विस्तार को प्राचीन भारत में सामुद्रिक तथा औपनिवेशिक सफलता के रूप में देखा गया। उन्होंने एशिया महाद्वीप के विस्तृत हिस्से में संस्कृति के विकास पर भारतीय संस्कृति के प्रभाव की ओर ध्यान खींचा था। उन्होंने लिखा हैः

भारत तथा उसके पश्चिम, उत्तर और उत्तर-पूर्व में स्थित क्षेत्रों के बीच हुई अंतःक्रियाओं का वर्णन कर लेने के बाद मैं अब भारत द्वारा पूर्व तथा दक्षिण-पूर्व में निवास करने वाले लोगों के जीवन तथा सभ्यता को आकार रुप देने में भारत द्वारा निभाई गई भूमिका पर कुछ विस्तार से चर्चा करने की ओर अग्रसर हूँगा। दूसरे क्षेत्र की भाँति ही इस क्षेत्र में भी यह अंतःक्रिया पहले व्यापार के माध्यम से शुरू हुई, जल तथा स्थल दोनों मार्गों से। किंतु शीघ्र ही यह एक नियमित औपनिवेशीकरण में बदल गई और भारतीयों ने एशिया महाद्वीप के उन विभिन्न हिस्सों में राजनीतिक सत्ता की स्थापना की जो चीन के ठीक दक्षिण में स्थित थे और भारत के पूर्व या दक्षिण-पूर्व के क्षेत्र में स्थित थे। एक हज़ार वर्षों से भी अधिक समय तक यहाँ की मुख्य भूमि तथा मलय (Malay) द्वीप-समूह के द्वीपों में कई हिंदू राज्यों का उदय हुआ तथा उन्होंने अपना विस्तार किया। जब भारत में भी हिंदू शासन एक अतीत का विषय बन गया था इन सुदूर स्थित क्षेत्रों में हिंदू नाम धारण करने वाले शक्तिशाली राजा विशाल साम्राज्य में शासन कर रहे थे। हिंदू उपनिवेशवादी अपने साथ अपनी सभ्यता और संस्कृति का एक पूरा ढाँचा लेकर आए थे और जिसे उन्होंने अपनी संपूर्णता के साथ उन लोगों के बीच रोपा था जो अभी अपनी आदिम बर्बरता से भी बाहर नहीं निकले थे।

एंशिएंट इंडियन कॉलोनीज़ इन द फ़ार ईस्ट

के. एम. मुंशी के साथ मिलकर उन्होंने *हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ़ इंडियन पीपल* के कई भागों का संपादन किया जो एक दीर्घकालिक समय में भारतीय सभ्यता के क्रमिक विकास को समझने हेतु एक वैकल्पिक नज़रिया उपलब्ध कराता था। वह लिखते हैं, '...यह आग्रह करना मुश्किल होगा कि मुस्लिम-पूर्व भारत के 4000 साल, जिसके इतिहास और संस्कृति के विषय में हमें भली-भाँति ज्ञान है उसे 400 या 500 सालों के मुस्लिम काल या 200 वर्षों से भी कम समय के ब्रिटिश काल के समकक्ष महत्व दिया जाए।' यहाँ यह ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि मजूमदार ने भारत में सांस्कृतिक निरंतरता की ओर ध्यान आकर्षित किया जो कई हज़ारों सालों के इतिहास में व्याप्त है। इसे भारतीय इतिहास की सबसे अनूठी विशेषता माना जाता है।

मजूमदार के लेखन-कार्य का संदर्भ देते हुए दिलीप के. चक्रवर्ती ने लिखा हैः

> मजूमदार ने दक्षिण-पूर्व एशिया की मुख्य भूमि तथा द्वीपीय क्षेत्रों में 'बृहत्तर भारत' की अवधारणा का भी विकास किया, यहाँ के प्रत्येक क्षेत्र के प्राथमिक स्रोतों पर शोध किया और इस विस्तृत क्षेत्र में भारतीय उपस्थिति का एक विस्तृत और तथ्य-आधारित विवरण प्रस्तुत किया। भारतीय भाषाएँ तथा लिपियाँ, भारतीय प्रतिमाशास्त्र और कला शैलियाँ, भारतीय मंदिर वास्तुकला, संस्कृत में लिखित अभिलेख, भारतीय नामों को धारण करने वाले राजा, भारतीय अनुष्ठान – ये सभी इस विविधता-पूर्ण तथापि एकीकृत क्षेत्र के इतिहास तथा पुरातत्व से अंतरंग रूप से जुड़ गए थे। ये निश्चित रूप से उपनिवेश शब्द के आधुनिक अर्थ में उपनिवेश नहीं थे। उपनिवेश बनाने वाले क्षेत्र के लाभ के लिए कार्यरत कोई शोषणकारी युक्ति यहाँ नहीं थी। लेकिन ये समुचित रूप से भारतीय-कृत राज्य थे, वैसे ही जैसे प्राचीन शिंज़ियांग (Xinxiang) और मध्य-एशिया के कई भाग जैसे अफ़गानिस्तान और तुर्कमेनिस्तान के क्षेत्रों से लेकर किर्गिज़स्तान और ताजिकिस्तान भी शामिल हैं।
>
> **चक्रबर्ती, के. दिलीप, 'नेशनलिज्म इन द स्टडी ऑफ़ एंशिएंट इंडियन हिस्ट्री'** ***नेशनल सिक्योरिटी*****, विवेकानंद इंटरनेशनल फाऊंडेशन भाग IV (1) (2021) 25-43; (https://www.vifindia.org)**

आर. सी. मजूमदार और अन्य राष्ट्रवादी विद्वानों का यह तर्क था कि भारतीयों ने दक्षिण-पूर्व एशियाई संस्कृति को प्रभावित किया था और उन्होंने उनकी संस्कृति में भारतीय तत्वों की ओर संकेत किया। मजूमदार ने यह भी उल्लेख किया कि किस प्रकार वहाँ के स्थानीय विश्वास और व्यवहार अंशतः भारतीय तत्वों द्वारा प्रभावित हुए थे।

बोध प्रश्न-2

1) के. पी. जायसवाल ने प्राचीन भारत में राजव्यवस्था की लोकतांत्रिक प्रकृति की किस प्रकार व्याख्या की है?

....

....

....

2) राधा कुमुद मुखर्जी द्वारा भारत की आधारभूत अखंडता के किए गए विश्लेषण की चर्चा कीजिए।

....

....

....

3) भारत की सांस्कृतिक निरंतरता तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ भारत के सांस्कृतिक संपर्क के संबंध में आर. सी. मजूमदार के मत की व्याख्या कीजिए।

....

....

....

18.7 सारांश

राष्ट्रवादी इतिहासकारों का लेखन, जिससे हमने आपका परिचय ऊपर कराया है, इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि उन्होंने भारत के संबंध में औपनिवेशिक दृष्टिकोण, विशेषकर जिसका प्रतिनिधित्व

जेम्स मिल करते थे, के विपरीत भारत को एक महान् राष्ट्र के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया। औपनिवेशिक इतिहासलेखन का सारतत्व यह था कि भारत में ब्रिटिश शासन ने अंधविश्वास और पिछड़ेपन को मिटाकर भारतीय लोगों की सांस्कृतिक आधुनिकीकरण करने में सहायता की। राष्ट्रवादी इतिहासलेखन ने यह दिखाया है कि भारतीय सभ्यता पश्चिमी सभ्यता से प्राचीनतर है। लोकतंत्र के विचार तथा वैज्ञानिक ज्ञान प्राचीन भारतीय सभ्यता के अविभाज्य अंग रहे थे। उन्होंने भारत की प्राचीन सभ्यता में अस्तित्वमान रही गौरवशाली परम्परा तथा सांस्कृतिक एकता की भावना को सिद्ध करने का प्रयास किया। राष्ट्रवादी परियोजना काफ़ी हद तक 19वीं शताब्दी से ही उभर रहे राष्ट्रवादी आंदोलन से प्रभावित हुई थी। इसके साथ ही भारत के गौरवशाली अतीत और इसके दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों में प्रभाव की ओर ध्यान आकर्षित कर राष्ट्रवादी लेखकों ने स्वतंत्रता के आंदोलन में योगदान दिया। हमने यहाँ राष्ट्रवादी लेखन की परम्परा की व्याख्या करने के लिए चार महत्वपूर्ण इतिहासकारों का चयन किया है। आप देख चुके हैं कि आर. जी. भंडारकर, के. पी. जायसवाल, राधा कुमुद मुखर्जी, आर. सी. मजूमदार ने राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य से इतिहास लेखन में किस तरह बहुमूल्य योगदान दिया है।

18.8 शब्दावली

परमहंस सभा : 1849 में दुर्गाराम मेहताजी तथा दादोबा पांडुरंग के नेतृत्व में स्थापित एक गुप्त संगठन जो *जाति* प्रथा की बुराइयों का विरोध करता था और सहभोज-संबंधी भेदभाव को मिटाना चाहता था

पौर* तथा *जनपद : अक्सर *पौर* तथा *जनपद* पारिभाषिक शब्द *रामायण* में साथ-साथ आते हैं। डॉ. जायसवाल के अनुसार *पौर* नगर परिषद् थी जिसमें गणमान्य नागरिक तथा व्यापारी पीठासीन होते थे जबकि *जनपद* राज्य की सभा थी। इसके पास सांविधानिक शक्तियाँ भी थीं। डॉ. जायसवाल के अनुसार ये संसद के दो सदनों के नमूने पर दो जुड़वाँ-प्रतिनिध्यात्मक सभाएँ थीं। लेकिन, ए. एस. ओल्टेकर के अनुसार इनसे सामान्यतः 'नागरिकों' का बोध होता है न कि 'सांविधानिक/प्रतिनिध्यात्मक संगठनों का'।

18.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) देखें भाग 18.2
2) देखें भाग 18.3

बोध प्रश्न-2

1) देखें भाग 18.4
2) देखें भाग 18.5
3) देखें भाग 18.6

18.10 संदर्भ ग्रंथ

गॉटलोब, माइकेल, (संपा.) (2003) *हिस्टॉरिकल थिंकिंग इन साउथ एशियाः अ हैंडबुक ऑफ़ सोर्सेज़ फ़्रॉम कलोनीयल टाइम्ज़ टू द प्रैज़ेंट* (नई दिल्लीः ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

18.8 शैक्षणिक वीडियो

नाइनटींथ सेंचुरीः द पीरियड ऑफ़ इंडियन रैनेसांस
https://www.youtube.com/watch?v=hKGqiAa1LCI

ट्रिब्यूट टू गोपाल कृष्ण गोखले ऑन हिज़ डैथ एनिवर्सरी। 19 फरवरी 2021
https://www.youtube.com/watch?v=JZYibPgwHeM